रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा

अतिरिक्त पठन योजना—

की

संपादक
डा॰ विश्वमित्र उपाध्याय

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

जनवरी 1994
पौष 1915
PD 15T RP

प्रकाशन सहयोग

सी. एन. राव : *अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग*

प्रभाकर द्विवेदी : *मुख्य संपादक*
पूरन मल : *संपादक*
राजपाल : *सहायक संपादक*

यू. प्रभाकर राव : *मुख्य उत्पादन अधिकारी*
डी. साई प्रसाद : *उत्पादन अधिकारी*
चन्द्र प्रकाश टंडन : *कला अधिकारी*
विकास व. मेश्राम : *सहायक उत्पादन अधिकारी*
राजेश पिप्पल : *उत्पादन सहायक*

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैम्पस श्री अरविंद मार्ग नई दिल्ली 110016	सी.डब्ल्यू.सी. कैम्पस चितलापक्कम, क्रोमपेट मद्रास 600064	नवजीवन ट्रस्ट भवन डाकघर नवजीवन अहमदाबाद 380014	सी.डब्ल्यू.सी. कैम्पस 32, बी.टी. रोड, सुखचर 24 परगना 743179

आवरण : कर्ण कुमार चड्ढा

रु. 13.00

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा शगुन कंपोज़र्स, 92-बी, गली नं. 4, सफदरजंग एनक्लेव, नई दिल्ली 110029 द्वारा लेजर टाइपसैट होकर सर्ज एसोशिएट्स (प्रा.) लि., सी-454, सैक्टर 10,

आमुख

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के तत्वावधान में समय-समय पर किशोरों के लिए विभिन्न प्रकार की पूरक पाठ्यपुस्तकों का प्रकाशन होता रहा है, जिससे बालकों को विज्ञान एवं अन्य विषयों के विकास की अद्यतन जानकारी प्राप्त होती है। साथ ही उनको भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं तथा साहित्यिक एवं कलात्मक विरासत की भी जानकारी मिलती है। इन पूरक पाठ्यपुस्तकों द्वारा बालकों को प्रख्यात विद्वानों, राष्ट्रीय महापुरुषों, साहित्यिक व्यक्तियों, समाज-सुधारकों एवं लेखकों के जीवन तथा कार्यों का सम्यक् ज्ञान भी प्राप्त होता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के तहत तैयार किये गये पाठ्यक्रम में पूरक पठन के लिए पुस्तकों के पढ़ने की सिफारिश की गई है। यह अपेक्षा की जाती है कि विद्यार्थी पाठ्यपुस्तकों के अलावा अतिरिक्त पठन के रूप में कुछ पुस्तकें और पढ़ें। अतिरिक्त पठन में बच्चों की रुचि उत्पन्न करने के लिए परिषद् ने 'अतिरिक्त पठन योजना' के अंतर्गत कुछ पुस्तकें प्रकाशित करने का निर्णय लिया है। "रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा" इस शृंखला की पहली कड़ी है। इस पुस्तक का संपादन प्रसिद्ध पत्रकार और लेखक स्व. डॉ. विश्वमित्र उपाध्याय ने किया है।

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय के भारतीय भाषा केंद्र के अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष डा. नामवर सिंह के प्रति अत्यंत आभारी हूं जिन्होंने इस योजना में अपना महत्वपूर्ण योग दिया एवं मार्गदर्शन भी किया।

सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग के अध्यक्ष प्रो. अर्जुन देव ने इस योजना को नई दिशा प्रदान करने में अपना अमूल्य योग दिया। विभाग के सहकर्मी प्रो. रामजन्म शर्मा ने इस योजना में प्रकाशित होने वाली पुस्तकों का संयोजन किया एवं पांडुलिपियों को अंतिम रूप प्रदान किया। श्री शिवप्रकाश भसीन ने पुस्तक को तैयार करने में विशेष सहायता की। मैं इन सभी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

इस शृंखला के अंतर्गत प्रकाशित होने वाली पुस्तकों को सभी दृष्टियों से परिपूर्ण एवं प्रामाणिक बनाने के लिए राष्ट्रीय स्तर के अनेक विशेषज्ञों, अधिकारी विद्वानों एवं शिक्षकों का सहयोग प्राप्त किया गया। इन सभी के प्रति मैं विशेष रूप से अनुगृहीत हूँ।

आशा है बालकों की साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं भाषिक योग्यता की अभिवृद्धि में इस योजना की यह पुस्तक विशेष उपादेय सिद्ध होगी। पुस्तक के बारे में सुविज्ञ जनों द्वारा भेजे गए सुझावों और परामर्शों का हम स्वागत करेंगे।

अशोक कुमार शर्मा
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली
जनवरी 1994

प्रस्तावना

शहीद रामप्रसाद बिस्मिल भारत के गौरवपूर्ण क्रांतिकारी आंदोलन के अग्रणी नेता व संगठनकर्ता थे। यही नहीं बल्कि बिस्मिल बेजोड़ राष्ट्रीय कवि, लेखक व सफल अनुवादक भी थे। रामप्रसाद बिस्मिल की क्रांतिकारी कार्रवाइयों की तरह उनकी साहित्यिक कृतियों ने स्वतंत्रता-प्रेमियों को संघर्ष व बलिदान के मार्ग पर अग्रसर किया। स्वतंत्रताप्रेमी जन सभाओं, जेलों की बैरकों और फाँसी की कोठरियों में बिस्मिल की संघर्ष व बलिदान की भावनाओं से ओतप्रोत कविताएँ और नज़्में गाते थे। यह पुस्तक इसी क्रांतिवीर रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा है। इसे पढ़कर आज भी हमारे प्यारे देश के स्वाधीनता संग्राम में किए गए बलिदानों की याद ताज़ा हो जाती है। रामप्रसाद बिस्मिल ने यह आत्मकथा गोरखपुर जेल में 19 दिसंबर सन् 1927 को हुई अपनी फाँसी से दो दिन पूर्व अत्यंत कठिन परिस्थितियों में लिखकर समाप्त की थी। बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है : "रामप्रसाद बिस्मिल का आत्मचरित्र हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ आत्मचरित्र है। जिन परिस्थितियों में वह लिखा गया था, उनके बीच में से गुजरने का मौका लाखों में से एकाध को ही मिल सकता है।"

बिस्मिल ने अपनी यह आत्मकथा रजिस्टर के साइज के कागजों पर पेंसिल से लिखकर तीन खेपों में न जाने किस प्रकार गुप्त रूप से गोरखपुर के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता दशरथ प्रसाद द्विवेदी को भिजवाई थी। अंतिम खेप तो फाँसी से एक दिन पूर्व ही द्विवेदीजी के पास पहुँची थी। द्विवेदीजी ने इसे गणेश शंकर विद्यार्थी को दिया था। विद्यार्थीजी ने इस आत्मकथा को 'काकोरी के शहीद' नामक पुस्तक के प्रारंभ में प्रकाशित कराया था। यह आत्मकथा ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण कृति है। इसमें रामप्रसाद बिस्मिल के अभाव-ग्रस्त पारिवारिक जीवन, उनके सद्चरित्र, देशप्रेम व बलिदान की भावना तथा आम आदमी के सुख व समृद्धि की उनकी उत्कट अभिलाषा की जानकारी तो मिलती ही है, इसमें देश के क्रांतिकारी आंदोलन, उसकी विचारधारा, शक्ति और कमजोरियों पर भी प्रकाश पड़ता है। इस आत्मकथा में बिस्मिल स्वाधीनता-संग्राम में सशस्त्र क्रांतिकारी संघर्ष के योगदान को महत्वपूर्ण

मानते हैं। परंतु वह अपने अध्ययन और अनुभवों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि युवकों को आतंक और व्यक्तिगत हत्याओं का मार्ग छोड़कर खुले जन आंदोलन में शामिल होना चाहिए। वह युवकों, मजदूरों व किसानों को संगठित करके उन्हें आज़ादी की लड़ाई में उतारने और सच्चे समाजवाद की विचारधारा को अपनाने की सलाह देते हैं।

रामप्रसाद बिस्मिल और उनके परिवार ने गरीबी का जीवन बिताया था और देश की गरीब व अशिक्षित जनता की पीड़ा को निकट से देखा था। वास्तव में वह इसी गरीब जनता और देशप्रेमी युवकों के सच्चे प्रतिनिधि थे। अनेक अन्य क्रांतिकारियों व स्वाधीनता सेनानियों की तरह वह यही चाहते थे कि स्वतंत्र भारत में जनता को गरीबी और शोषण से मुक्त कराया जाए। यही उनका सपना था। उनके सपने और संकल्प को पूरा करना ही आज हमारा सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। इसके अतिरिक्त रामप्रसाद बिस्मिल हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सभी धर्मों, संप्रदायों और जातियों में एकता चाहते थे।

इस पुस्तक में शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा मूल रूप में दी गई है। परंतु स्कूली छात्रों को ध्यान में रखकर इसे उनकी रुचि और स्तर के अनुरूप संपादित किया गया है।

स्वाधीनता के बाद देश में छात्रों व युवकों को स्वाधीनता आंदोलन तथा देश की आज़ादी के लिए किए गए संघर्ष, त्याग, बलिदान और मुक्ति आंदोलन के मूल्यों व सपनों की पर्याप्त शिक्षा दी जानी चाहिए। आशा है कि शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की इस आत्मकथा के अध्ययन से छात्रों को क्रांतिकारी आंदोलन तथा क्रांतिकारियों के विचारों की जानकारी मिलेगी और उनके हृदय में देशप्रेम, त्याग व देशसेवा की भावना उत्पन्न होगी।

बी-55, गुलमोहर पार्क
नई दिल्ली-110 049

विश्वमित्र उपाध्याय

आभार

इस पुस्तक के निर्माण में कृपापूर्ण योगदान के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् निम्नलिखित विद्वानों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती है :

प्रो. नामवर सिंह, प्रो. निर्मला जैन, स्व. प्रो. रवीन्द्र श्रीवास्तव, प्रो. मुजीब रिज़वी, डॉ. परमानंद श्रीवास्तव, डॉ. गुणाकर मुले, डॉ. के. डी. शर्मा, डॉ. निरंजन कुमार सिंह, डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, डॉ. नित्यानंद तिवारी, डॉ. मानसिंह वर्मा, डॉ. जयपाल सिंह तरंग, डॉ. एस. पी. मित्तल, श्री र. शौरिराजन।

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा ? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा ? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है ?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

अनुक्रम

प्रथम खण्ड
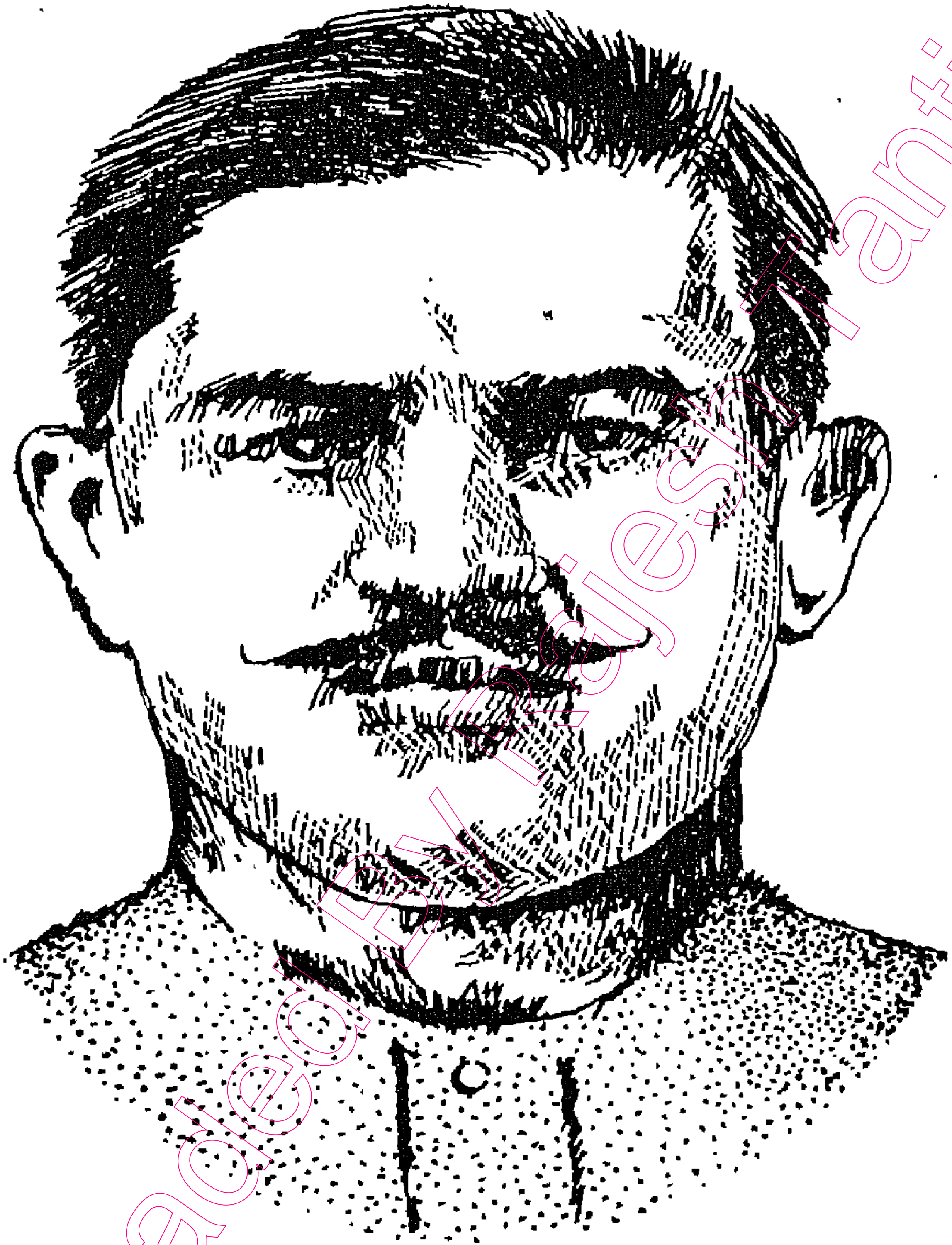
आत्म-चरित्र

तोमरधार[1] में चंवल नदी के किनारे पर दो ग्राम आबाद हैं, जो ग्वालियर राज्य में बहुत प्रसिद्ध हैं, क्योंकि इन गाँवों के निवासी बड़े उद्दंड हैं। इन गाँवों के निवासी राज्य की सत्ता की कोई चिन्ता नहीं करते। ज़मींदारों का यह हाल है कि जिस साल उनके मन में आता है राज्य को भूमि-कर (लगान) दे देते हैं और जिस साल उनकी इच्छा नहीं होती, मालगुजारी देने से साफ इंकार कर जाते हैं। यदि तहसीलदार या कोई और राज्य का अधिकारी आता है तो ये ज़मींदार बीहड़[2] में चले जाते हैं और महीनों बीहड़ों में ही पड़े रहते हैं। उनके पशु भी वहीं रहते हैं और उनका खाना-पीना भी बीहड़ों में ही होता है। घर पर कोई ऐसा मूल्यवान पदार्थ नहीं छोड़ते जिसे नीलाम करके मालगुजारी वसूल की जा सके। एक ज़मींदार के संबंध में यह कथा प्रचलित है कि मालगुजारी न देने के कारण ही उसको कुछ भूमि माफी में मिल गई। पहले तो कई साल भागे रहे। एक बार धोखे से पकड़ लिए गए तो तहसील के अधिकारियों ने उन्हें बहुत सताया। उनको कई दिनों तक बिना खाना-पानी दिए रस्सी से बाँधकर रखा। अंत में जलाने की धमकी दे, उसके पैरों पर सूखी घास डाल कर आग लगवा दी। किन्तु उन ज़मींदार महोदय ने भूमि-कर देना स्वीकार नहीं किया। और यही उत्तर दिया कि ग्वालियर महाराज को कोष में मेरे कर न देने से ही घाटा नहीं पड़ जाएगा। संसार क्या जानेगा, अमुक व्यक्ति उद्दंडता के कारण ही अपना समय

व्यतीत करता है। राज्य को लिखा गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि उतनी भूमि उन महाशय को माफी में दे दी गई। इसी प्रकार एक समय इन गाँवों के निवासियों को एक अद्‌भुत खेल सूझा। उन्होंने महाराजा के रिसाले के साठ ऊँट चुराकर बीहड़ों में छिपा दिए। राज्य को लिखा गया, जिसपर राज्य की ओर से आज्ञा हुई कि दोनों गाँव तोप लगाकर उड़वा दिए जाएँ। न जाने किस प्रकार समझाने-बुझाने से वे ऊँट वापस किए गए और अधिकारियों को समझाया गया कि इतने बड़े राज्य में थोड़े से वीर लोगों का निवास है, इनका विध्वंस न करना ही उचित होगा। तब तोपें लौटाई गईं और गाँव उड़ाए जाने से बचे। ये लोग अब राज्य के निवासियों को तो अधिक नहीं सताते, किन्तु अनेक बार अंग्रेजी राज्य-[3] में आकर उपद्रव कर जाते हैं और अमीरों के मकानों पर छापा मार कर रात-ही-रात बीहड़ में दाखिल हो जाते हैं। बीहड़ में पहुँच जाने पर पुलिस या फौज कोई भी उनका बाल-बाँका नहीं कर सकती। ये दोनों गाँव अंग्रेजी राज्य की सीमा से लगभग पंद्रह मील की दूरी पर चंबल नदी के तट पर हैं। यहीं के एक प्रसिद्ध वंश में मेरे पितामह (बाबा) श्री नारायणलाल जी का जन्म हुआ था। वह पारिवारिक कलह और अपनी भाभी के असहनीय दुर्व्यवहार के कारण मजबूर हो अपनी जन्मभूमि छोड़ इधर-उधर भटकते रहे। अंत में अपनी धर्मपत्नी व दो पुत्रों के साथ वह शाहजहाँपुर पहुँचे। उनके इन्हीं दो पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र श्री मुरलीधर जी मेरे पिता हैं। उस समय उनकी आयु आठ वर्ष और उनके छोटे पुत्र– मेरे चाचा श्री कल्याणमल– की उम्र छः वर्ष की थी। इस समय यहाँ अकाल का भयंकर प्रकोप था।

दुर्दिन

अनेक प्रयत्न करने के बाद शाहजहाँपुर में एक अत्तार महोदय की दुकान पर मेरे बाबा श्री नारायण लाल जी को तीन रुपये मासिक वेतन की नौकरी मिली। तीन रुपये मासिक में अकाल के समय चार प्राणियों का किस प्रकार

निर्वाह (गुजर-बसर) हो सकता था ? दादीजी ने बहुत प्रयत्न किया कि अपने आप केवल एक समय आधा पेट भोजन करके बच्चों का पेट पालां जाए, किन्तु फिर भी निर्वाह न हो सका। बाजरा, कुकनी, सामा, ज्वार आदि खाकर दिन काटने चाहे, किन्तु फिर भी गुजारा न हुआ। तब आधा बथुआ, चना या कोई दूसरा साग, जो सबसे सस्ता हो उसको लेकर, सबसे सस्ता अनाज उसमें आधा मिलाकर थोड़ा-सा नमक डालकर उसे स्वयं खातीं और लड़कों को चना या जौ की रोटी देती थीं। दादाजी भी इस प्रकार समय व्यतीत करते थे। आधा पेट खाकर बड़ी कठिनाई से दिन तो कट जाता, परंतु पेट में घोंटू दबाकर रात काटना कठिन हो जाता। यह तो भोजन की दशा थी, वस्त्र तथा रहने के स्थान के किराये के लिए धन कहाँ से आता ? दादीजी ने चाहा कि भले लोगों के घरों में उन्हें कोई मजदूरी ही मिल जाए, किन्तु अनजान व्यक्ति का, जिसकी भाषा भी अपने देश की भाषा से न मिलती हो, भले घरों में सहसा कौन विश्वास कर सकता था ? कोई मजदूरी पर अपना अनाज भी पीसने को न देता था। डर था कि अकाल का समय है, खा लेगी। बहुत प्रयत्न करने पर दो एक महिलाएँ अपने घर पर अनाज पिसवाने पर राजी हुई, किन्तु काम कर रही पुरानी मजदूरिनों को जवाब कैसे दें ? इसी प्रकार अड़चनों के बाद पाँच-सात सेर अनाज पीसने को मिल जाता, जिसकी पिसाई उस समय एक पैसे प्रति पंसेरी थी। बड़ी कठिनाई से आधा पेट एक समय भोजन करके तीन-चार घंटों तक पीसकर एक पैसा या डेढ़ पैसा मिलता। फिर घर पर आकर बच्चों के लिए भोजन तैयार करना पड़ता था। दो, तीन वर्ष तक यही दशा रही। दादाजी प्रायः अपने गाँव लौट जाने का विचार प्रकट करते, किन्तु दादीजी का यही उत्तर होता कि जिनके कारण देश (गाँव) छूटा, धन-सामग्री सब नष्ट हुई और ये दिन देखने पड़े अब उन्हीं के पैरों में सिर रखकर दासत्व स्वीकार करने से इसी प्रकार प्राण देना ही श्रेष्ठ है, ये दिन सदैव न रहेंगे। सब प्रकार के संकट सहे, किन्तु दादीजी देश (गाँव) को लौट कर न गईं।

चार-पाँच वर्ष में जब कुछ सज्जन परिचित हो गए और जान लिया कि यह महिला भले घर की है, कुसमय पड़ने से दीन-दशा को प्राप्त हुई है, तब बहुत-सी महिलाएँ विश्वास करने लगीं। अकाल भी दूर हो गया था। कभी-कभी किसी सज्जन के यहाँ से कुछ दान मिल जाता, कोई ब्राह्मण भोजन करा देता। इसी प्रकार समय व्यतीत होने लगा। कई महानुभावों ने, जिनके कोई संतान न थी और धनादि पर्याप्त था, दादीजी को अनेक प्रकार के प्रलोभन दिए कि वह अपना एक लड़का उन्हें दे दें और जितना धन माँगें उतना ले लें। किन्तु दादीजी आदर्श माता थीं। उन्होंने इस प्रकार के प्रलोभन की जरा भी परवाह न की और अपने बच्चों का किसी न किसी प्रकार पालन करती रहीं।

मेहनत-मजदूरी तथा पंडिताई द्वारा कुछ धन एकत्रित हुआ। कुछ महानुभावों के कहने से पिताजी के किसी पाठशाला में शिक्षा पाने का प्रबंध कर दिया गया। श्री दादाजी ने भी कुछ प्रयत्न किया, उनका वेतन भी बढ़ गया और वह सात रुपये मासिक पाने लगे। इसके बाद उन्होंने नौकरी छोड़, पैसे तथा दुअन्नी, चवन्नी आदि बेचने की दुकान की। पाँच-सात आने रोज पैदा होने लगे। जो दुर्दिन आए थें, प्रयत्न तथा साहस से दूर होने लगे। इसका सब श्रेय दादीजी को ही है। जिस साहस तथा धैर्य से उन्होंने काम लिया वह वास्तव में किसी दैवी शक्ति की सहायता ही कही जाएगी। अन्यथा एक अशिक्षित ग्रामीण महिला की क्या सामर्थ्य (शक्ति) है कि वह नितांत अपरिचित स्थान में जाकर मेहनत-मजदूरी करके अपना तथा अपने बच्चों का पेट पालन करते हुए उनको शिक्षित बनाए और फिर ऐसी परिस्थितियों में, जबकि उसने कभी भी अपने जीवन में घर से बाहर पैर न रखा हो और जो ऐसे कट्टर देश की रहने वाली हो कि, जहाँ पर प्रत्येक हिन्दू-प्रथा का पूर्णतः पालन किया जाता हो, जहाँ के निवासी अपनी प्रथाओं की रक्षा के लिए प्राणों की जरा भी चिंता न करते हों। किसी ब्राह्मण, क्षत्री या वैश्य की कुलवधू का क्या साहस, जो डेढ़ हाथ का घूँघट निकाले बिना एक घर से दूसरे घर चली जाए।

शूद्र जाति (उत्तर भारत के संदर्भ में) की वधुओं के लिए भी यही नियम है कि वे रास्ते में बिना घूँघट निकाले न जाएँ। शूद्रों का पहनावा ही अलग है, ताकि उन्हें देखकर ही दूर से पहचान लिया जाए कि वह किसी निम्न जाति की स्त्री है। ये प्रथाएँ इतनी प्रचलित हैं कि उन्होंने अत्याचार का रूप धारण कर लिया है। एक समय किसी चमार की वधू, जो अंग्रेजी राज्य से विवाह करके गई थी, कुल प्रथानुसार ज़मींदार के घर पैर छूने के लिए गई। वह पैरों में बिछुवे पहने हुई थी और सब पहनावा चमारों का पहने थी। ज़मींदार महोदय की निगाह उसके पैरों पर पड़ी। पूछने पर मालूम हुआ कि चमार की बहू है। ज़मीदार साहब जूता पहनकर आए और उसके पैरों पर खड़े होकर इतने जोर से दबाया कि उसकी अंगुलियाँ कट गईं। उन्होंने कहा कि यदि चमारों की बहुएँ बिछुवा पहनेंगी तो ऊँची जाति के घर की स्त्रियाँ क्या पहनेंगी ? ये ऊँची जाति के लोग बहुत अशिक्षित तथा मूर्ख हैं, किन्तु जाति के अभिमान में चूर रहते हैं। गरीब-से-गरीब अशिक्षित ब्राह्मण या क्षत्री, चाहे वह किसी आयु का हो, यदि शूद्र जाति की बस्ती में से गुजरे तो चाहे कितना ही धनी या वृद्ध कोई शूद्र क्यों न हो, उसे उठकर पालागन या जुहार करनी ही पड़ेगी। यदि ऐसा न करे तो उसी समय वह ब्राह्मण या क्षत्री उसे जूतों से मार सकता है।

परमात्मा की दया से बुरे दिन समाप्त हुए। पिताजी कुछ शिक्षा पा गए। और एक मकान भी दादीजी ने खरीद लिया। दरवाज़े-दरवाज़े भटकने वाले कुटुंब को शांतिपूर्वक बैठने का स्थान मिल गया और फिर श्री पिताजी का विवाह करने का विचार हुआ। दादीजी दादाजी तथा पिताजी के साथ अपने मायके गईं। वहीं पिताजी का विवाह कर दिया। वहाँ दो-चार मास रहकर सब लोग वधू की विदाई कराकर साथ लिवा लाए।

गृहस्थ जीवन

विवाह हो जाने के बाद पिताजी म्युनिसिपैलिटी में पंद्रह रुपये मासिक वेतन पर नौकर हो गए। उन्होंने कोई बड़ी शिक्षा प्राप्त न की थी। पिताजी को यह नौकरी पसंद न आई। उन्होंने एक दो साल के बाद नौकरी छोड़ कर स्वतंत्र व्यवसाय आरंभ करने का प्रयत्न किया और कचहरी (अदालत) में सरकारी स्टाम्प बेचने लगे। उनके जीवन का अधिक भाग इसी व्यवसाय में व्यतीत हुआ। साधारण श्रेणी के गृहस्थ बनकर उन्होंने इसी व्यवसाय द्वारा अपनी संतानों को शिक्षा दी, अपने परिवार का पालन किया और अपने मुहल्ले के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में गिने जाने लगे। वह रुपये का लेन-देन भी करते थे। उन्होंने तीन बैलगाड़ियाँ भी बनाई थीं, जो किराये पर चला करती थीं। पिताजी को व्यवसाय से प्रेम था। उनका शरीर बड़ा मज़बूत और सुडौल था। वह नियमपूर्वक अखाड़े में कुश्ती लड़ा करते थे।

पिताजी के घर में एक पुत्र उत्पन्न हुआ किन्तु वह मर गया। उसके एक साल बाद लेखक (श्री रामप्रसाद) ने ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष 11 सम्वत् 1954 विक्रमी को जन्म लिया। बड़े प्रयत्नों से मनौती मानकर अनेक गंडे, ताबीज तथा कवचों द्वारा श्री दादाजी ने इस शरीर की रक्षा के लिए प्रयत्न किया। सम्भवतः हमारे घर में बालकों का कोई रोग प्रवेश कर गया था। अतएव जन्म लेने के एक या दो मास बाद मेरे शरीर की दशा भी पहले बालक जैसी होने लगी। किसी ने बताया कि सफेद खरगोश को मेरे शरीर पर घुमाकर जमीन पर छोड़ दिया जाए, यदि बीमारी होगी तो खरगोश तुरंत मर जाएगा। कहते हैं हुआ भी ऐसा ही। एक सफेद खरगोश मेरे शरीर पर से उतारकर जैसे ही जमीन पर छोड़ा गया, वैसे ही उसने तीन-चार चक्कर काटे और मर गया। मेरे विचार में किसी अंश में यह सम्भव भी है, क्योंकि औषधि तीन प्रकार की होती हैं— 1. दैविक (ईश्वरीय), 2. मानुषिक और 3. पैशाचिक। पैशाचिक औषधियों में अनेक प्रकार के पशु या पक्षियों के मांस या रक्त का उपयोग किया जाता है, जिसका उपयोग वैद्यक के

ग्रंथों में पाया जाता है। इनमें से एक बड़ा चमत्कारक तथा आश्चर्यजनक प्रयोग यह है कि जिस बच्चे को सूखे की बीमारी हो गई हो, यदि उसके सामने चमगादड़ चीर कर लाया जाए तो एक-दो मास का बालक चमगादड़ को पकड़ कर खून चूस लेगा और बीमारी जाती रहेगी। यह बड़ी उपयोगी औषधि है और एक महात्मा की बताई हुई है।

जब मैं सात वर्ष का हुआ तो पिताजी ने स्वयं ही मुझे हिन्दी अक्षरों का लिखना सिखाया और एक मौलवी साहब के मकतब (विद्यालय) में उर्दू पढ़ने के लिए भेज दिया। मुझे भली भाँति स्मरण है कि पिताजी अखाड़े में कुश्ती लड़ने जाते थे और अपने से वलिष्ठ (मजबूत) तथा शरीर में डेढ़ गुने पट्ठे को पटक देते थे। कुछ दिनों बाद पिताजी का एक बंगाली (श्री चटर्जी) महाशय से प्रेम हो गया। चटर्जी महाशय की अंग्रेजी दवा की दुकान थी। वह बड़े भारी नशाबाज थे। एक समय में आधा छटाँक चरस की चिलम उड़ाया करते थे। उन्हीं की संगत में पिताजी ने चरस पीना सीख लिया, जिसके कारण उनका शरीर काफी कमजोर हो गया। दस वर्ष में ही संपूर्ण शरीर सूख कर हड्डियाँ निकल आईं। चटर्जी महाशय शराब भी पीने लगे। अतएव उनका कलेजा बढ़ गया और उसी से उनकी मृत्यु हो गई। मेरे बहुत कुछ समझाने पर पिताजी ने अपनी चरस पीने की आदत को छोड़ा, किन्तु बहुत दिनों के वाद।

मेरे बाद पाँच बहनों और तीन भाइयों का जन्म हुआ। दादीजी ने कहा कि कुल की प्रथा के अनुसार कन्याओं को मार डाला जाए, किन्तु माताजी ने इसका विरोध किया और कन्याओं के प्राणों की रक्षा की। मेरे कुल में यह पहला ही समय था कि कन्याओं का पोषण हुआ। पर इनमें से दो बहनों और दो भाइयों का देहांत हो गया। शेष एक भाई इस समय (1927) दस वर्ष का है और तीन बहनें बचीं। माताजी के प्रयत्न से तीनों बहनों को अच्छी शिक्षा दी गई और उनके विवाह बड़ी धूमधाम से किए गए। इससे पूर्व हमारे कुल की कन्याएँ किसी को नहीं ब्याही गईं, क्योंकि वे जीवित ही नहीं रही थीं।

दादाजी बड़ी सरल प्रकृति के मनुष्य थे। जब तक वे जीवित रहे, पैसे बेचने का ही व्यवसाय करते रहे। उनको गाय पालने का बहुत बड़ा शौक था। स्वयं ग्वालियर जाकर बड़ी-बड़ी गायें खरीद लाते थे। वहाँ की गायें काफी दूध देती हैं। ये गायें बड़ी सीधी भी होती हैं। दूध दूहते समय उनकी टाँगें बाँधने की आवश्यकता नहीं होती और जब जिसका जी चाहे बिना बच्चे के दूध दूह सकता है। बचपन में मैं अक्सर जाकर गाय के थन में मुँह लगाकर दूध पिया करता था। वास्तव में वहाँ की गायें दर्शनीय होती हैं।

दादाजी मुझे खूब दूध पिलाया करते थे। उन्हें अट्ठारह गोटी (बघिया बग्घा) खेलने का बड़ा शौक था। शाम के समय रोजाना शिव-मंदिर में जाकर दो घंटे तक परमात्मा का भजन किया करते थे। उनका लगभग पचपन वर्ष की आयु में देहांत हुआ।

बचपन से ही पिताजी मेरी शिक्षा का अधिक ध्यान रखते थे और जरा-सी भूल करने पर बहुत पीटते थे। मुझे यह बात अब भी बहुत अच्छी तरह याद है कि जब मैं देवनागरी (हिन्दी) के अक्षर लिखना सीख रहा था तो मुझे "उ" लिखना न आया। मैंने बहुत प्रयत्न किया। पर जब पिताजी कचहरी चले गए तो मैं भी खेलने चला गया। पिताजी ने कचहरी से आकर मुझसे "उ" लिखवाया, मैं लिख न सका। उन्हें मालूम हो गया कि मैं खेलने चला गया था। इस पर उन्होंने मुझे बंदूक के लोहे के गज से इतना पीटा कि गज टेढ़ा पड़ गया। मैं भाग कर दादीजी के पास चला गया, तब बचा। मैं छोटेपन से ही बहुत शरारती था। पिताजी के पर्याप्त शासन रखने पर भी शरारत करता था। एक समय किसी के बाग में जाकर आड़ू के वृक्षों में से सब आड़ू तोड़ डाले। माली पीछे दौड़ा, किन्तु मैं उसके हाथ नहीं आया। माली ने सब आड़ू पिताजी के सामने ला रखे। उस समय पिताजी ने मुझे इतना पीटा कि मैं दो दिन तक उठ नहीं सका। इसी प्रकार खूब पिटता था, किन्तु शरारत अवश्य करता था। शायद उस बचपन की मार से ही यह शरीर बहुत कठोर और सहनशील बन गया।

जब मैं उर्दू का चौथा दर्जा पास करके पाँचवें में आया उस समय मेरी आयु लगभग चौदह वर्ष की होगी। इस बीच मुझे पिताजी के संदूक से रुपये-पैसे चुराने की आदत पड़ गई थी। इन पैसों से उपन्यास खरीदकर खूब पढ़ता। पुस्तक विक्रेता महाशय पिताजी के जान-पहचान के थे। उन्होंने मेरी पिताजी से शिकायत की। अब मेरी कुछ जाँच होने लगी। मैंने उन महाशय के यहाँ से किताब खरीदना ही छोड़ दिया। मुझमें दो-एक खराब आदतें भी पड़ गईं। मैं सिगरेट पीने लगा। कभी-कभी भंग भी जमा लेता था। छोटी उम्र में स्वतन्त्रतापूर्वक पैसे हाथ आ जाने से और उर्दू के प्रेम व रसपूर्ण उपन्यासों और गज़लों की पुस्तकों ने मेरे चरित्र पर भी अपना बुरा प्रभाव दिखाना आरम्भ कर दिया। घुन लगना आरंभ हुआ ही था कि परमात्मा ने बड़ी सहायता की। मैं एक रोज भंग पीकर पिताजी की संदूकची में से रुपये निकालने गया। नशे की हालत में होश ठीक न रहने के कारण संदूकची खटक गई। माताजी को संदेह हुआ। उन्होंने मुझे पकड़ा दिया। चाभी भी पकड़ी गई। मेरे संदूक की तलाशी ली गई, बहुत से रुपये निकले और सारा भेद खुल गया। मेरी किताबों में कई उपन्यास आदि भी पाए गए जो उसी समय फाड़ डाले गए।

परमात्मा की कृपा से मेरी चोरी पकड़ ली गई, नहीं तो दो चार वर्ष में न दीन का रहता न दुनिया का। इसके बाद भी मैंने बहुत घातें लगाईं, किन्तु पिताजी ने संदूकची का ताला बदल दिया था। मेरी कोई चाल न चल सकी। अब जब कभी भी मौका मिल जाता तो माताजी के रुपयों पर हाथ फेर देता था। इसी प्रकार की बुरी आदतों के कारण दो बार उर्दू मिडिल की परीक्षा में उत्तीर्ण न हो सका। तब मैंने अंग्रेजी पढ़ने की इच्छा प्रकट की। पिताजी मुझे अंग्रेजी पढ़ाना न चाहते थे और किसी कारोबार में लगाना चाहते थे, किन्तु माताजी की कृपा से मैं अंग्रेजी पढ़ने भेजा गया। दूसरे वर्ष जब मैं उर्दू मिडिल की परीक्षा में फेल हुआ उसी समय पड़ोस के देव-मंदिर में, जिसकी दीवार मेरे मकान से मिली

थी, एक पुजारी जी आ गए। वह बहुत अच्छे चरित्र वाले व्यक्ति थे। मैं उनके पास उठने-बैठने लगा।

मैं मंदिर में आने-जाने लगा। कुछ पूजा-पाठ भी सीखने लगा। मुझ पर पुजारी जी के उपदेशों का बड़ा उत्तम प्रभाव हुआ। मैं अपना अधिक समय भजन-पूजन तथा पढ़ने में बिताने लगा। पुजारीजी मुझे ब्रह्मचर्य का पालन करने का उपदेश देते थे। वह मेरे पथ-प्रदर्शक बने। मैंने एक-दूसरे सज्जन की देखा-देखी व्यायाम करना भी आरंभ कर दिया। अब तो मुझे भक्ति-मार्ग में कुछ आनंद प्राप्त होने लगा और चार-पाँच महीने में ही व्यायाम भी खूब करने लगा। मेरी सब बुरी आदतें और बुरी भावनाएँ जाती रहीं। स्कूलों की छुट्टियाँ समाप्त होने पर मैंने मिशन स्कूल के अंग्रेजी के पाँचवें दर्जे में नाम लिखा लिया। इस समय मेरी और सब बुरी आदतें तो छूट गईं थीं, किन्तु सिगरेट पीना न छूटता था। मैं सिगरेट बहुत पीता था। एक दिन में पचास-साठ सिगरेट पी डालता था। मुझे बड़ा दुख होता था कि मैं इस जीवन में सिगरेट पीने की बुरी आदत को न छोड़ सकूँगा। स्कूल में भरती होने के थोड़े दिनों बाद ही एक सहपाठी श्री सुशीलचंद सेन से कुछ विशेष स्नेह हो गया। उन्हीं की दया के कारण मेरा सिगरेट पीना भी छूट गया।

देव-मंदिर में भजन-पूजा करने की प्रवृत्ति को देखकर श्री मुंशी इन्द्रजीत जी ने मुझे संध्या करने का उपदेश दिया। मुंशीजी उसी मंदिर में रहने वाले किसी सज्जन के पास आया करते थे। व्यायाम करने के कारण मेरा शरीर बड़ा सुगठित हो गया था और रंग निखर आया था। मैंने जानना चाहा कि संध्या क्या वस्तु है। मुंशीजी ने आर्य-समाज संबंधी कुछ उपदेश दिए। इसके बाद मैंने सत्यार्थ प्रकाश (आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा लिखित ग्रंथ) पढ़ा। इससे तख्ता ही पलट गया। सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन ने मेरे जीवन के इतिहास में एक नया पृष्ठ खोल दिया। मैंने उसमें लिखित ब्रह्मचर्य के कठिन नियमों का पालन करना प्रारंभ कर दिया। मैं एक कंबल को तख्त पर बिछा कर सोता और

प्रातःकाल चार बजे ही बिस्तर से उठ जाता था। स्नान और संध्या आदि करने के बाद व्यायाम करता, परंतु मन की भावनाएँ ठीक न होतीं। मैंने रात के समय भोजन करना भी छोड़ दिया। रात को केवल थोड़ा दूध ही पीने लगा। मिर्च खटाई तो छूता भी न था। मेरा स्वास्थ्य भी दर्शनीय हो गया। सब लोग मेरे स्वास्थ्य को आश्चर्य से देखा करते थे।

मैं थोड़े दिनों में ही बड़ा कट्टर आर्यसमाजी हो गया। आर्यसमाज के अधिवेशन में आता-जाता। संन्यासी महात्माओं के उपदेशों को बड़ी श्रद्धा से सुनता। जब कोई संन्यासी आर्यसमाज में आता तो उसकी हर प्रकार से सेवा करता, क्योंकि मेरी प्राणायाम सीखने की बहुत इच्छा थी। जिस संन्यासी का नाम सुनता शहर से तीन-चार मील उसकी सेवा के लिए जाता। मैं इस बात की परवाह नहीं करता कि वह संन्यासी किस मत का अनुयायी है। जब मैं अंग्रेजी के सातवें दर्जे में था तब सनातनधर्मी पंडित जगत प्रसाद जी शाहजहाँपुर पधारे। उन्होंने आर्यसमाज का खंडन करना शुरू किया। आर्यसमाजियों ने भी उनका विरोध किया और पंडित अखिलानंदजी को बुलाकर शास्त्रार्थ (शास्त्रों का सही अर्थ जानने के लिए बहस) कराया। शास्त्रार्थ संस्कृत में हुआ। जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। मेरे कामों को देखकर मुहल्ले वालों ने पिताजी से मेरी शिकायत की। पिताजी ने मुझसे कहा कि आर्यसमाजी हार गए। अब तुम आर्यसमाज से अपना नाम कटा दो। मैंने पिताजी से कहा कि आर्यसमाज के सिद्धांत विश्वव्यापी हैं, उन्हें कौन हरा सकता है? अनेक वाद-विवाद के पश्चात् पिताजी जिद्द पकड़ गए कि आर्यसमाज से त्यागपत्र नहीं देगा तो मैं तुझे रात में सोते समय मार दूँगा, या तो आर्यसमाज से त्यागपत्र दे दे या घर छोड़ दे।

मैंने यह सोचा कि पिताजी का क्रोध यदि अधिक बढ़ गया और उन्होंने मुझ पर कोई ऐसी वस्तु दे पटकी जिससे बुरा परिणाम हुआ तो अच्छा न होगा। अतएव घर छोड़कर चला जाना ही अच्छा है। मैं केवल एक कमीज पहने खड़ा था और पायजामा उतार कर धोती पहन रहा था। पायजामे के नीचे लंगोट बँधा

था। पिताजी ने हाथ से धोती छीन ली और कहा, "घर से निकल।" मुझे भी क्रोध आ गया। मैं पिताजी के पैर छूकर गृह त्याग कर चला गया। कहाँ जाऊँ कुछ समझ में न आया। शहर में किसी से जान-पहचान न थी कि जहाँ छिपा रहता। मैं जंगल की ओर चला गया। एक रात और एक दिन मैं पेड़ पर बैठा रहा। भूख लगने पर खेतों में से हरे चने तोड़कर खाए, नदी में स्नान किया और जलपान किया। दूसरे दिन शाम को पं. अखिलानंद जी का व्याख्यान आर्यसमाज में था। मैं आर्यसमाज मंदिर में गया। एक पेड़ के नीचे एकांत में व्याख्यान सुन रहा था कि पिताजी दो व्यक्तियों को लिए हुए आ पहुँचे और मैं पकड़ लिया गया। वह उसी समय पकड़ कर मुझे हेडमास्टर के पास ले गए। हेडमास्टर साहब ईसाई थे। मैंने उन्हें सारी बात कह सुनाई। उन्होंने पिताजी को समझाया कि समझदार लड़के को मारना-पीटना ठीक नहीं। उन्होंने मुझे भी बहुत कुछ उपदेश दिया। उस दिन से पिताजी ने कभी भी मुझ पर हाथ नहीं उठाया, क्योंकि मेरे घर से निकल जाने पर घर में बहुत दुःख रहा। एक रात और एक दिन किसी ने भोजन नहीं किया, सब बड़े दुखी हुए कि अकेला पुत्र न जाने नदी में डूब गया या रेल से कट गया। पिताजी के हृदय को भी बहुत भारी धक्का पहुँचा। उस दिन से वह मेरी हर बात सहन कर लेते थे। मैं काफी मेहनत से पढ़ता था और अपने दर्जे में प्रथम श्रेणी में पास होता था। यह स्थिति आठवें दर्जे तक रही।

जब मैं आठवें दर्जे में था, उसी समय स्वामी श्री सोमदेव जी सरस्वती आर्यसमाज शाहजहाँपुर में पधारे। उनके व्याख्यानों का जनता पर अच्छा प्रभाव हुआ। कुछ सज्जनों के अनुरोध पर स्वामीजी कुछ दिनों के लिए शाहजहाँपुर आर्यसमाज मंदिर में ठहर गए। स्वामीजी की तबियत भी कुछ खराब थी, इस कारण शाहजहाँपुर का जलवायु लाभदायक देख कर वहाँ ठहरे थे। मैं उनके पास आया-जाया करता था। मैंने स्वामीजी महाराज की बहुत सेवा की और इसी सेवा के फलस्वरूप मेरे जीवन में नया परिवर्तन हो गया। मैं रात को दो-तीन बजे तक और दिन भर उनकी सेवा करता रहा। अनेक प्रकार की औषधियों का प्रयोग

किया। कुछ व्यक्तियों ने बड़ी सहानुभूति दिखलाई परंतु रोग ठीक न हो सका। स्वामीजी मुझे कई प्रकार के उपदेश दिया करते थे। मैं उन उपदेशों को सुनकर उन पर अमल करने का पूरा प्रयत्न करता था। वास्तव में वह मेरे गुरुदेव तथा पथ-प्रदर्शक थे। उनकी शिक्षाओं ने मेरे जीवन में आत्मिक बल का संचार किया जिनके संबंध में मैं अलग से वर्णन करूँगा।

कुछ नवयुवकों ने मिलकर आर्यसमाज मंदिर में आर्य कुमार-सभा खोली थी, जिसके साप्ताहिक अधिवेशन प्रत्येक शुक्रवार को हुआ करते थे। वहीं पर धार्मिक पुस्तकों का पठन, विषय-विशेष पर निबंध-लेखन और पठन तथा वाद-विवाद होता था। कुमार-सभा से ही मैंने जनता के सम्मुख बोलने का अभ्यास किया। प्रायः कुमार-सभा के नवयुवक मिलकर शहर के मेलों में प्रचार करने जाया करते थे। बाजारों में व्याख्यान देकर आर्यसमाज के सिद्धांतों का प्रचार करते थे। ऐसा करते-करते मुसलमानों से बहस होने लगी। अतएव पुलिस ने झगड़े का भय देखकर बाजारों में व्याख्यान देना बंद करा दिया। आर्यसमाज के सदस्यों ने कुमार-सभा के प्रयत्न को देखकर उस पर अपना शासन जमाना चाहा, किन्तु कुमार किसी का अनुचित शासन कब मानने वाले थे। आर्यसमाज के मंदिर में ताला डाल दिया गया कि कुमार-सभा वाले आर्यसमाज मंदिर में अधिवेशन न करें। यह भी कहा गया कि यदि वे वहाँ अधिवेशन करेंगे, तो पुलिस को बुलाकर उन्हें मंदिर से निकलवा दिया जाएगा। कई महीनों तक हम लोग मैदान में अपनी सभा के अधिवेशन करते रहे, किन्तु बालक ही तो थे, कब तक इस प्रकार कार्य चला सकते थे ? कुमार-सभा टूट गई। तब आर्यसमाजियों को शांति हुई।

जब लखनऊ में कांग्रेस हुई तो अखिल भारतीय कुमार सम्मेलन का भी वार्षिक अधिवेशन वहीं हुआ। उस अवसर पर सबसे अधिक पुरस्कार लाहौर और शाहजहाँपुर की कुमार सभाओं ने पाए थे, जिनकी प्रशंसा समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुई थी। उन्हीं दिनों मिशन स्कूल के एक विद्यार्थी से मेरा परिचय हुआ। वह कभी-कभी कुमार-सभा में आ जाया करते थे। मेरे भाषण का उन पर

अधिक प्रभाव हुआ। वैसे तो वह मेरे मकान के निकट ही रहते थे। किन्तु आपस में कोई मेल न था। बैठने-उठने से आपस में प्रेम बढ़ गया। वह एक ग्राम के निवासी थे। जिस गाँव में उनका घर था वह गाँव बड़ा प्रसिद्ध है। वहाँ का प्रत्येक निवासी अपने घर में बिना लाइसेंस अस्त्र-शस्त्र रखता है। बहुत से लोगों के यहाँ बंदूक तथा तमंचे भी रहते हैं, जो गाँव में ही बन जाते हैं। ये सब टोपीदार होते हैं। उनके पास भी एक नाली का छोटा-सा पिस्तौल था जिसे वह अपने साथ शहर में रखते थे। जब मुझसे अधिक प्रेम बढ़ा तो उन्होंने वह पिस्तौल मुझे रखने के लिए दिया। इस प्रकार के हथियार रखने की मेरी अधिक इच्छा थी, क्योंकि मेरे पिता के कई शत्रु थे, जिन्होंने पिताजी पर अकारण ही लाठियों का प्रहार किया था। मैं चाहता था कि यदि पिस्तौल मिल जाए तो मैं पिताजी के शत्रुओं को मार डालूँ। यह एक नाली का पिस्तौल वह अपने पास रखते तो थे, किन्तु उसको चलाकर न देखा था। मैंने उसे चलाकर देखा तो वह नितांत बेकार सिद्ध हुआ। मैंने उसे ले जाकर एक कोने में डाल दिया। उनसे स्नेह इतना बढ़ गया कि सायंकाल को मैं अपने घर से खीर की थाली ले जाकर उनके साथ-साथ उनके मकान पर ही भोजन किया करता था। वह मेरे साथ श्री स्वामी सोमदेवजी के पास भी जाया करते थे। उनके पिता जब शहर आए तो उनको यह बड़ा बुरा मालूम हुआ। उन्होंने मुझसे अपने लड़के के पास न आने या उसे कहीं साथ न ले जाने के लिए बहुत ताड़ना की और कहा कि यदि मैं उनका कहना न मानूँगा तो वह गाँव से आदमी लाकर मुझे पिटवाएँगे। मैंने उनके पास जाना-आना त्याग दिया, किन्तु वह मेरे यहाँ आते-जाते रहे।

लगभग अट्ठारह वर्ष की उम्र तक मैं रेल पर न चढ़ा था। मैं इतना दृढ़ सत्यवक्ता हो गया था कि एक समय रेल पर चढ़ कर तीसरे दर्जे का टिकट खरीदा था, पर इंटर क्लास में बैठकर दूसरों के साथ-साथ चला गया। इस बात से मुझे बड़ा खेद हुआ। मैंने अपने साथियों से अनुरोध किया कि यह तो एक प्रकार की चोरी है। सबको मिलकर इंटर क्लास का भाड़ा स्टेशन मास्टर को दे

देना चाहिए। एक समय मेरे पिताजी दीवानी में किसी पर दावा करके वकील से कह गए थे कि जो काम हो वह मुझसे करा लें। कुछ आवश्यकता पड़ने पर वकील साहब ने मुझे बुला भेजा और कहा कि मैं पिताजी के हस्ताक्षर वकालतनामे पर कर दूँ। मैंने तुरंत उत्तर दिया कि यह तो धर्म के विरुद्ध होगा, इस प्रकार का पाप मैं कदापि नहीं कर सकता। वकील साहब ने बहुत कुछ समझाया कि एक सौ रुपये से अधिक का दावा है, मुकदमा खारिज हो जाएगा। किन्तु मुझ पर कुछ भी प्रभाव न हुआ, न मैंने हस्ताक्षर किए। अपने जीवन में हमेशा सत्य का आचरण करता था, चाहे कुछ हो जाए, सत्य बात कह देता था।

मेरी माता मेरे धर्म-कार्यों में तथा शिक्षादि में बड़ी सहायता करती थीं। वह प्रातःकाल चार बजे ही मुझे जगा दिया करती थीं। मैं नित्य-प्रति नियमपूर्वक हवन किया करता था। मेरी छोटी बहन का विवाह करने के लिए माताजी और पिताजी ग्वालियर गए। मैं और श्री दादीजी शाहजहाँपुर में ही रह गए, क्योंकि मेरी वार्षिक परीक्षा थी। परीक्षा समाप्त करके मैं भी बहन के विवाह में सम्मिलित होने को गया। बारात आ चुकी थी। मुझे गाँव के बाहर ही मालूम हो गया कि बारात में वेश्या आई है। मैं घर न गया और न बारात में सम्मिलित हुआ। मैंने विवाह में कोई भी भाग न लिया। मैंने माताजी से थोड़े रुपये माँगे। माताजी ने मुझे लगभग 125 रुपये दिए, जिनको लेकर मैं ग्वालियर गया। यह अवसर रिवाल्वर खरीदने का अच्छा लगा। मैंने सुन रखा था कि रियासत में बड़ी आसानी से हथियार मिल जाते हैं। बड़ी खोज की। टोपीदार बंदूक तथा पिस्तौल तो मिलते थे, किन्तु कारतूसी हथियारों का कहीं पता नहीं लगा। पता लगा भी तो एक महाशय ने मुझे ठग लिया और 75 रुपये में टोपीदार पाँच फायर करने वाला एक रिवाल्वर दिया। रियासत की बनी हुई बारूद और थोड़ी-सी टोपियाँ दे दीं। मैं इसी को लेकर बड़ा प्रसन्न हुआ। सीधा शाहजहाँपुर पहुँचा। रिवाल्वर को भरकर चलाया तो गोली केवल पंद्रह या बीस गज पर ही गिरी, क्योंकि बारूद अच्छी न थी। मुझे बड़ा खेद हुआ। माताजी भी जब लौट कर शाहजहाँपुर आईं तो उन्होंने

मुझसे पूछा कि क्या लाए ? मैंने कुछ कह कर टाल दिया। रुपये सब खर्च हो गएं थे। शायद एक गिन्नी बची थी, सो मैंने माताजी को लौटा दी।

मुझे जब किसी बात के लिए धन की आवश्यकता होती तो मैं माताजी से कहता और वह मेरी माँग पूरी कर देती थीं। मेरा स्कूल घर से एक मील दूर था। मैंने माताजी से प्रार्थना की कि मुझे साइकिल ले दें। उन्होंने लगभग एक सौ रुपये दिए। मैंने साइकिल खरीद ली। उस समय मैं अंग्रेजी के नवें दर्ज़े में आ गया था। किसी धार्मिक या देश संबंधी पुस्तक पढ़ने की इच्छा होती तो माताजी से ही दाम ले जाता। लखनऊ कांग्रेस जाने के लिए मेरी बड़ी इच्छा थी। दादीजी और पिताजी तो बहुत विरोध करते रहे, किन्तु माताजी ने मुझे खर्च दे ही दिया। उसी समय शाहजहाँपुर में सेवा-समिति का आरंभ हुआ था। मैं बड़े उत्साह के साथ सेवा-समिति में सहयोग देता था। पिताजी और दादीजी को मेरे इस प्रकार के कार्य अच्छे न लगते थे, किन्तु माताजी मेरा उत्साह भंग न होने देती थीं, जिसके कारण उन्हें अक्सर पिताजी की डाँट-फटकार तथा दंड भी सहन करना पड़ता था। वास्तव में, मेरी माताजी स्वर्गीय देवी हैं। मुझमें जो कुछ जीवन तथा साहस आया, वह मेरी माताजी तथा गुरुदेव श्री सोमदेव जी की कृपाओं का ही परिणाम है। दादीजी और पिताजी मेरे विवाह के लिए बहुत अनुरोध करते, किन्तु माताजी यही कहतीं कि शिक्षा पा चुकने के बाद ही विवाह करना उचित होगा। माताजी के प्रोत्साहन तथा सद्व्यवहार ने मेरे जीवन में वह दृढ़ता उत्पन्न की कि किसी आपत्ति तथा संकट के आने पर भी मैंने अपने संकल्प को न त्यागा।

मेरी माँ

ग्यारह वर्ष की उम्र में माताजी विवाह कर शाहजहाँपुर आई थीं। उस समय वह नितांत अशिक्षित एक ग्रामीण कन्या के समान थीं। शाहजहाँपुर आनें के थोड़े दिनों बाद श्री दादीजी ने अपनी छोटी बहन को बुला लिया। उन्होंने माताजी को गृहकार्य की शिक्षा दी। थोड़े दिनों में माताजी ने घर के सब काम-काज को समझ

लिया और भोजनादि का ठीक-ठीक प्रबंध करने लगीं। मेरे जन्म होने के पाँच या सात वर्ष बाद उन्होंने हिन्दी पढ़ना आरंभ किया। पढ़ने का शौक उन्हें खुद ही पैदा हुआ था। मुहल्ले की सखी-सहेली जो घर पर आया करती थीं, उन्हीं में जो शिक्षित थीं, माताजी उनसे अक्षर-बोध करतीं। इस प्रकार, घर का सब काम कर चुकने के बाद जो कुछ समय मिल जाता, उसमें पढ़ना-लिखना करतीं। परिश्रम के फल से थोड़े दिनों में ही वह देवनागरी पुस्तकों का अध्ययन करने लगीं। मेरी बहनों को छोटी आयु में, माताजी ही उन्हें शिक्षा दिया करती थीं। जब से मैंने आर्यसमाज में प्रवेश किया, तब से माताजी से खूब वार्तालाप होता। उस समय की अपेक्षा अब उनके विचार भी कुछ उदार हो गए हैं। यदि मुझे ऐसी माता न मिलतीं, तो मैं भी अति साधारण मनुष्यों की भाँति संसार-चक्र में फँसकर जीवन निर्वाह करता। शिक्षादि के अतिरिक्त क्रांतिकारी जीवन में भी उन्होंने मेरी वैसी ही सहायता की है, जैसी मेजिनी[5] की उनकी माता ने की थी। यथासमय मैं उन सारी बातों का उल्लेख करूँगा। माताजी का सबसे बड़ा आदेश मेरे लिए यही था कि किसी की प्राणहानि न हो। उनका कहना था कि अपने शत्रु को भी कभी प्राण दंड न देना। उनके इस आदेश की पूर्ति करने के लिए मुझे मजबूरन दो-एक बार अपनी प्रतिज्ञा भंग भी करनी पड़ी थी।

जन्मदात्री जननी ! इस जीवन में तो तुम्हारा ऋण उतारने के प्रयत्न करने का भी अवसर न मिला। इस जन्म में तो क्या यदि अनेक जन्मों में भी सारे जीवन, प्रयत्न करूँ तो भी तुमसे उऋण नहीं हो सकता। जिस प्रेम तथा दृढ़ता के साथ तुमने इस तुच्छ जीवन का सुधार किया है, वह अवर्णनीय है। मुझे जीवन की प्रत्येक घटना का स्मरण है कि तुमने जिस प्रकार अपनी देव-वाणी का उपदेश करके मेरा सुधार किया है। तुम्हारी दया से ही मैं देश-सेवा में संलग्न हो सका। धार्मिक जीवन में भी तुम्हारे ही प्रोत्साहन ने सहायता दी। जो कुछ शिक्षा मैंने ग्रहण की उसका भी श्रेय तुम्हीं को है। जिस मनोहर रूप से तुम मुझे उपदेश करती थीं, उसका स्मरण कर तुम्हारी मंगलमयी मूर्ति का ध्यान आ जाता है और

मस्तक झुक जाता है। तुम्हें यदि मुझे ताड़ना भी देनी हुई, तो बड़े स्नेह से हर बात को समझा दिया। यदि मैंने धृष्टतापूर्ण उत्तर दिया तब तुमने प्रेम भरे शब्दों में यही कहा कि तुम्हें जो अच्छा लगे, वह करो, किन्तु ऐसा करना ठीक नहीं, इसका परिणाम अच्छा न होगा। जीवनदात्री ! तुमने इस शरीर को जन्म देकर केवल पालन-पोषण ही नहीं किया किन्तु आत्मिक, धार्मिक तथा सामाजिक उन्नति में तुम्हीं मेरी सदैव सहायक रहीं। जन्म-जन्मांतर परमात्मा ऐसी ही माता दें।

महान से महान संकट में भी तुमने मुझे अंधीर नहीं होने दिया। सदैव अपनी प्रेम भरी वाणी को सुनाते हुए मुझे सांत्वना देती रहीं। तुम्हारी दया की छाया में मैंने अपने जीवन-भर में कोई कष्ट अनुभव न किया। इस संसार में मेरी किसी भी भोग-विलास तथा ऐश्वर्य की इच्छा नहीं। केवल एक इच्छा है, वह यह कि एक बार श्रद्धापूर्वक तुम्हारे चरणों की सेवा करके अपने जीवन को सफल बना लेता। किन्तु यह इच्छा पूर्ण होती नहीं दिखाई देती और तुम्हें मेरी मृत्यु की दुखभरी खबर सुनाई जाएगी। माँ ! मुझे विश्वास है कि तुम यह समझ कर धैर्य धारण करोगी कि तुम्हारा पुत्र माताओं की माता— भारत माता की सेवा में अपने जीवन को बलि-देवी की भेंट कर गया और उसने तुम्हारी कोख कलंकित न की, अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहा। जब स्वाधीन भारत का इतिहास लिखा जाएगा, तो उसके किसी पृष्ठ पर उज्ज्वल अक्षरों में तुम्हारा भी नाम लिखा जाएगा। गुरु गोबिंदसिंह जी की धर्मपत्नी ने जब अपने पुत्रों की मृत्यु की खबर सुनी तो बहुत प्रसन्न हुई थीं और गुरु के नाम पर धर्म-रक्षार्थ, अपने पुत्रों के बलिदान पर मिठाई बाँटी थी। जन्मदात्री ! वर दो कि अंतिम समय भी मेरा हृदय किसी प्रकार विचलित न हो और तुम्हारे चरण कमलों को प्रणाम कर मैं परमात्मा का स्मरण करता हुआ शरीर-त्याग करूँ।

मेरे गुरुदेव

माताजी के अतिरिक्त जो कुछ जीवन तथा शिक्षा मैंने प्राप्त की वह पूज्यपाद श्री 108 स्वामी सोमदेवजी की कृपा का परिणाम है। आपका नाम

श्रीयुत ब्रजलाल चोपड़ा था। पंजाब के लाहौर शहर में आपका जन्म हुआ था। आपका परिवार प्रसिद्ध था, क्योंकि आपके दादा महाराजा रणजीत सिंह के मंत्रियों में से एक थे। आपके जन्म के कुछ समय बाद आपकी माता का देहांत हो गया था। आपकी दादी ने ही आपका पालन-पोषण किया था। आप अपने पिता की अकेली संतान थे। जब आप बड़े हुए तो चाचियों ने दो-तीन बार आपको जहर देकर मार देने का प्रयत्न किया, ताकि उनके लड़कों को ही जायदाद का अधिकार मिल जाए। आपके चाचा आप पर बड़ा स्नेह रखते थे और शिक्षादि की ओर विशेष ध्यान रखते थे। अपने चचेरे भाइयों के साथ-साथ आप भी अंग्रेजी स्कूल में पढ़ते थे। जब आपने एंट्रेंस की परीक्षा दी तो परीक्षा-फल प्रकाशित होने पर आप यूनिवर्सिटी में प्रथम आए और चाचा के लड़के फेल हो गए। घर में बड़ा शोक मनाया गया। भोजन तक नहीं बना। आपकी प्रशंसा तो दूर, किसी ने उस दिन भोजन करने को भी न पूछा और बड़ी उपेक्षा की दृष्टि से देखा। आपका हृदय पहले से ही घायल था, इस घटना से आपके जीवन को और भी बड़ा आघात पहुँचा।

चाचाजी के कहने-सुनने पर कॉलिज में नाम लिखा तो लिया, किन्तु बड़े उदासीन रहने लगे। आपके हृदय में दया बहुत थी। प्रायः अपनी किताबें तथा कपड़े दूसरे सह-पाठियों को बाँट दिया करते थे। नए कपड़े बाँटकर पुराने कपड़े स्वयं पहना करते थे। एक-दो बार चाचाजी से दूसरे लोगों ने कहा कि ब्रजलाल को कपड़े भी आप नहीं बनवा देते, जो वह पुराने फटे-कपड़े पहने फिरते हैं। चाचाजी को बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि उन्होंने कई जोड़े कपड़े थोड़े दिनों पहले ही बनवाए थे। आपके संदूकों की तलाशी ली गई। उनमें दो-चार जोड़ी पुराने कपड़े निकले, तब चाचाजी ने पूछा तो मालूम हुआ कि वे नए कपड़े निर्धन विद्यार्थियों को बाँट दिया करते हैं। चाचाजी ने कहा कि जब कपड़े बाँटने की इच्छा हो, कह दिया करो, हम विद्यार्थियों को कपड़े बनवा दिया करेंगे, अपने कपड़े न बाँटा करो। आप प्रायः निर्धन विद्यार्थियों को अपने घर पर ही भोजन

कराया करते थे। चाचियों तथा चचेरे भाइयों के व्यवहार से आपको बड़ा क्लेश होता था। इसी कारण से आपने विवाह नहीं किया। घरेलू दुर्व्यवहार से दुखी होकर आपने घर त्याग देने का निश्चय कर लिया और एक रात को जब सब सो रहे थे, चुपचाप उठकर घर से निकल गए। कुछ भी सामान साथ में न लिया। बहुत दिनों तक इधर-उधर भटकते रहे। भटकते-भटकते आप हरिद्वार पहुँचे। वहाँ एक सिद्ध योगी से भेंट हुई। श्री ब्रजलाल जी को जिस वस्तु की इच्छा थी, वह प्राप्त हो गई। उसी स्थान पर रहकर श्री ब्रजलाल जी ने योग-विद्या की पूर्ण शिक्षा पाई। योगीराज़ की कृपा से आप 18-20 घंटे की समाधि लगा लेने लगे। कई वर्ष तक आप वहाँ रहे। इस समय आपको योग का इतना अभ्यास हो गया था कि अपने शरीर को आप इतना हल्का कर लेते थे कि पानी पर पृथ्वी के समान चले जाते थे। अब आपको देश-भ्रमण तथा अध्ययन करने की इच्छा हुई। अनेक स्थानों में भ्रमण करते हुए अध्ययन करते रहे। जर्मनी तथा अमेरिका से बहुत-सी पुस्तकें मँगाईं, जो शास्त्रों के संबंध में थीं।

जब लाला लाजपतराय को देश-निर्वासन का दंड मिला था, उस समय आप लाहौर में थे। वहाँ आपने एक समाचार-पत्र की संपादकी के लिए डिक्लेरेशन दाखिल किया। डिप्टी कमिश्नर उस समय किसी के भी समाचार-पत्र के डिक्लेरेशन को स्वीकार न करता था। जब आपसे भेंट हुई, तो वह बहुत प्रभावित हुआ और उसने डिक्लेरेशन मंजूर कर लिया। अखबार का पहला ही अग्रलेख "अंग्रेजों को चेतावनी" के नाम से निकला। लेख इतना उत्तेजनापूर्ण था कि थोड़ी देर में ही समाचार-पत्र की सब प्रतियाँ बिक गईं और जनता के अनुरोध पर उसी अंक का दूसरा संस्करण प्रकाशित करना पड़ा। डिप्टी कमिश्नर के पास रिपोर्ट हुई। उसने आपको दर्शनार्थ बुलाया। वह बड़ा क्रुद्ध था। लेख को पढ़कर काँपता, और क्रोध में आकर मेज पर हाथ दे मारता था। किन्तु अंतिम शब्दों को पढ़कर चुप हो जाता। उस लेख के कुछ शब्द यों थे कि "यदि अंग्रेज अब भी न समझेंगे तो वह दिन दूर नहीं कि सन् 1857 के दृश्य फिर दिखाई दें और अंग्रेजों के बच्चों

को कत्ल किया जाए, उनकी महिलाओं की बेइज्जती हो, आदि। किंतु यह सब स्वप्न है"। "यह सब स्वप्न है" इन्हीं शब्दों को पढ़कर डिप्टी कमिश्नर कहता कि हम तुम्हारा कुछ नहीं कर सकते।

स्वामी सोमदेव भ्रमण करते हुए बंबई पहुँचे। वहाँ पर आपके उपदेशों को सुनकर जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। एक व्यक्ति, जो श्री अबुल कलाम आजाद के बड़े भाई थे, आपका व्याख्यान सुनकर मोहित हो गए। वह आपको अपने घर ले गए। इस समय तक आप गेरुआ कपड़ा नहीं पहनते थे। केवल एक लुंगी और कुर्ता पहनते थे, और साफा बाँधते थे। श्री अबुल कलाम आजाद के पूर्वज अरब के निवासी थे। आपके पिता के बंबई में बहुत से प्रशंसक थे और कथा की तरह कुछ धार्मिक ग्रंथ पढ़ने पर हजारों रुपये चढ़ावे में आया करते थे। वह सज्जन इतने मोहित हो गए कि उन्होंने धार्मिक कथाओं का पाठ करने के लिए जाना ही छोड़ दिया। वह दिन-रात आपके पास ही बैठे रहते। जब आप उनसे कहीं जाने को कहते तो वह रोने लगते और कहते कि मैं तो आपके आत्मिक ज्ञान (आत्मा से संबंधित जानकारी) के उपदेशों पर मोहित हूँ। मुझे संसार में किसी वस्तु की इच्छा नहीं। आपने एक दिन नाराज होकर उनके धीरे से चपत मार दी जिससे वे दिन-भर रोते रहे। उनको घर वालों तथा शिष्यों ने बहुत समझाया किन्तु वह धार्मिक कथा कहने न जाते। यह देखकर उनके शिष्यों को बड़ा क्रोध आया कि हमारे धर्मगुरु एक काफिर के चक्कर में फँस गए हैं। एक संध्या को स्वामी जी अकेले समुद्र के तट पर भ्रमण करने गए थे कि कई मुरीद मकान पर बंदूक लेकर स्वामी जी को मार डालने के लिए आए। यह समाचार जानकर उन्होंने स्वामीजी के प्राणों का भय देख स्वामीजी से बंबई छोड़ देने की प्रार्थना की। प्रातःकाल एक स्टेशन पर स्वामीजी को तार मिला कि आपके प्रेमी श्री अबुल कलाम आजाद के भाई साहब ने आत्महत्या कर ली। तार पाकर आपको बड़ा क्लेश हुआ। जिस समय आपको इन बातों का स्मरण हो आता था तो बड़े दुखी होते थे। मैं एक संध्या के समय आपके निकट बैठा था, अंधेरा

काफी हो गया था। स्वामीजी ने बड़ी गहरी ठंडी साँस ली। मैंने चेहरे की ओर देखा तो आँखों से आँसू बह रहे थे। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने कई घंटे प्रार्थना की, तब आपने उपरोक्त विवरण सुनाया।

अंग्रेजी की योग्यता आपकी बड़ी उच्चकोटि की थी। आपका शास्त्र विषयक ज्ञान बड़ा गंभीर था। आप बड़े निर्भीक वक्ता थे। आपकी योग्यता को देखकर एक बार मद्रास की कांग्रेस कमेटी ने आपको अखिल भारतीय कांग्रेस का प्रतिनिधि चुनकर भेजा था। आगरा की आर्य मित्र सभा के वार्षिकोत्सव पर आपके व्याख्यानों को श्रवण कर राजा महेन्द्र प्रताप जी बड़े मुग्ध हुए थे। राजा साहब ने आपके पैर छुए और आपको अपनी कोठी पर लिवा ले गए। उस समय से राजा साहब बहुधा आपके उपदेश सुना करते और आपको अपना गुरु मानते थे। इतना साफ निर्भीक बोलने वाला मैंने आज तक नहीं देखा। सन् 1913 ई. में मैंने आपका पहला व्याख्यान शाहजहाँपुर में सुना था। आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर आप पधारे थे। उस समय आप बरेली में निवास करते थे। आपका शरीर बहुत दुबला-पतला था, क्योंकि आपको एक अजीब रोग हो गया था। आप जब शौच जाते थे, तब आपके खून गिरता था। कभी दो छटाँक, कभी चार छटाँक और कभी-कभी तो एक सेर तक खून गिर जाता था। बवासीर आपको नहीं थी। ऐसा कहते थे कि किसी प्रकार योग की क्रिया बिगड़ जाने से पेट की आँत में कुछ विकार उत्पन्न हो गया। आँत सड़ गई। पेट चिरवाकर आँत कटवानी पड़ी और तभी से यह रोग हो गया था। बड़े-बड़े वैद्य-डाक्टरों की औषधिं की किन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ। इतने कमजोर होने पर भी जब व्याख्यान देते तब इतने जोर से बोलते कि तीन-चार फर्लांग से आपका व्याख्यान साफ सुनाई देता था। दो-तीन वर्ष तक आपको हर साल आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर बुलाया जाता। सन् 1915 ई. में कतिपय सज्जनों की प्रार्थना पर आप आर्यसमाज मंदिर शाहजहाँपुर में ही निवास करने लगे। इसी समय से मैंने आपकी सेवा में समय व्यतीत करना आरंभ कर दिया।

स्वामीजी मुझे धार्मिक तथा राजनीतिक उपदेश देते थे और इस प्रकार की पुस्तकें पढ़ने का भी आदेश देते थे। राजनीति में भी आपका ज्ञान उच्च कोटि का था। लाला हरदयाल से आपका बहुत परामर्श होता था। एक बार महात्मा मुंशीरामजी (स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानंदजी) को आपने पुलिस के प्रकोप से बचाया। आचार्य रामदेवजी तथा श्री कृष्णजी से आपका बड़ा स्नेह था। राजनीति में आप मुझसे अधिक खुलते न थे। आप मुझसे बहुधा कहा करते थे कि एंट्रेंस पास कर लेने के बाद यूरोप-यात्रा अवश्य करना। इटली जाकर महात्मा मेजिनी[5] की जन्मभूमि के दर्शन अवश्य करना। सन् 1916 ई. में लाहौर षड्यंत्र का मामला चला। मैं समाचार-पत्रों में उसका सब वृतांत बड़े चाव से पढ़ा करता था। श्री भाई परमानंदजी में मेरी बड़ी श्रद्धा थी, क्योंकि उनकी लिखी हुई "तवारीख हिन्द" पढ़कर मेरे हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। लाहौर षड्यंत्र का फैसला अखबारों में छपा। भाई परमानंदजी को फाँसी की सजा पढ़कर मेरे शरीर में आग लग गई।[6] मैंने विचारा कि अंग्रेज बड़े अत्याचारी हैं, इनके राज्य में न्याय नहीं, जो इतने बड़े महानुभाव को फाँसी की सजा का हुक्म दे दिया। मैंने प्रतिज्ञा की कि इसका बदला अवश्य लूँगा। जीवन-भर अंग्रेजी राज्य को नष्ट करने का प्रयत्न करता रहूँगा। इस प्रकार की प्रतिज्ञा कर चुकने के पश्चात् मैं स्वामीजी के पास आया। सब समाचार सुनाए और अखबार दिया। अखबार पढ़कर स्वामीजी बड़े दुखित हुए। तब मैंने अपनी प्रतिज्ञा के संबंध में कहा। स्वामीजी कहने लगे कि प्रतिज्ञा करना सरल है, किन्तु उस पर दृढ़ रहना कठिन है। मैंने स्वामीजी को प्रणाम कर उत्तर दिया कि यदि श्रीचरणों की कृपा रहेगी तो प्रतिज्ञा-पूर्ति में किसी प्रकार की त्रुटि न करूँगा। उस दिन से स्वामीजी कुछ-कुछ खुले। आप बहुत-सी बातें बताया करते थे। उसी दिन से मेरे क्रांतिकारी जीवन का सूत्रपात हुआ। यद्यपि आप आर्यसमाज के सिद्धांतों को सर्वप्रकारेण मानते थे किन्तु परमहंस रामकृष्ण, स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ तथा महात्मा कबीरदास के उपदेशों का वर्णन प्रायः किया करते थे।

धार्मिक तथा आत्मिक जीवन में जो दृढ़ता मुझमें उत्पन्न हुई, वह स्वामीजी महाराज के सदुपदेशों का ही परिणाम है। आपकी दया से ही मैं ब्रह्मचर्य-पालन में सफल हुआ। आपने मेरे भविष्य-जीवन के संबंध में जो-जो बातें कही थीं, वे अक्षरशः सत्य हुईं। आप कहा करते थे कि दुख है कि यह शरीर न रहेगा और तेरे जीवन में बड़ी विचित्र-विचित्र समस्याएँ आएँगी, जिनको सुलझाने वाला कोई न मिलेगा। यदि यह शरीर नष्ट न हुआ, जो असंभव है, तो तेरा जीवन भी संसार में एक आदर्श जीवन होगा। मेरा दुर्भाग्य था कि जब आपके अंतिम दिन बहुत निकट आ गए, तब आपने मुझे योगाभ्यास संबंधी कुछ क्रियाएँ बताने की इच्छा प्रकट की, किन्तु आप इतने दुर्बल हो गए थे कि जरा-सा परिश्रम करने या दस-बीस कदम चलने पर ही आपको बेहोशी आ जाती थी। आप फिर कभी इस योग्य न हो सके कि कुछ देर बैठकर कुछ क्रियाएँ मुझे बता सकते। आपने कहा था, मेरा योग भ्रष्ट हो गया। प्रयत्न करूँगा, मरण समय पास रहना, मुझसे पूछ लेना कि मैं कहाँ जन्म लूँगा। संभव है कि मैं बता सकूँ। नित्य-प्रति सेर-आध-सेर खून गिर जाने पर भी आप कभी भी क्षुब्ध न होते थे। आपकी आवाज़ भी कभी कमजोर न हुई। जैसे अद्वितीय आप वक्ता थे, वैसे ही आप लेखक भी थे। आपके कुछ लेख तथा पुस्तकें आपके एक भक्त के पास थीं, जो यों ही नष्ट हो गईं। कुछ लेख तथा पुस्तकें श्री स्वामी अनुभवानंदजी शांत ले गए थे। कुछ लेख आपने प्रकाशित भी कराए थे। लगभग 48 वर्ष की उम्र में आपका निधन हो गया। इस स्थान पर मैं महात्मा कबीरदास के कुछ अमृत वचनों का उल्लेख करता हूँ, जो मुझे बड़े प्रिय तथा शिक्षाप्रद मालूम हुए :

'कबिरा' शरीर सराय है भाड़ा देके बस।
जब भठियारी खुश रहे तब जीवन का रस।। 1।।
'कबिरा' क्षुधा है कूकरी करत भजन में भंग।
याको टुकरा डारि के सुमिरन करो निशंक।। 2।।

नींद निसारी मीच की उट्ठ 'कबिरा' जाग।
और रसायन त्याग के नाम रसायन चाख।। 3।।
चलना है रहना नहीं चलना बिसवें बीस।
'कबिरा' ऐसे सुहाग पर कौन बँधावे सीस।। 4।।
अपने-अपने चोर को सब कोई डारे मारि।
मेरा चोर जो मोहिं मिले सर्वस डारूँ वारि।। 5।।
कहे सुने की है नहीं देखा देखी बात।
दूल्हा दुल्हिन मिलि गए सूनी परी बरात।। 6।।
नैनन की करि कोठरी पुतरी पलंग बिछाय।
पलकन की चिक डारि के पीतम लेह रिझाय।। 7।।
प्रेम पियाला जो पिये सीस दच्छिना देय।
लोभी सीस न दै सके, नाम प्रेम का लेय।। 8।।
सीस उतारे भुइँ धरै, तापे राखै पाँव।
दास 'कबिरा' यूँ कहै ऐसा होय तो आव।। 9।।
निन्दक नियरे राखिये आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन उज्ज्वल करे सुभाय।। 10।।

ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन

वर्तमान समय में इस देश की कुछ ऐसी दुर्दशा हो रही है कि जितने धनी तथा गणमान्य व्यक्ति हैं, उनमें 99 प्रतिशत ऐसे हैं जो अपनी संतान-रूपी अमूल्य धन-राशि को अपने नौकर तथा नौकरानियों के हाथ में सौंप देते हैं। उनकी जैसी इच्छा हो, वे उन्हें बनावें। मध्यम श्रेणी के व्यक्ति भी अपने व्यवसाय तथा नौकरी इत्यादि में फँसे रहने के कारण संतान की ओर अधिक ध्यान नहीं दे सकते। सस्ता कामचलाऊ नौकर या नौकरानी रखते हैं और उन्हीं पर बाल-बच्चों का भार सौंप देते हैं, वे नौकर बच्चों को नष्ट करते हैं। यदि कुछ भगवान की दया हो

गई, और, बच्चे नौकर-नौकरानियों के हाथ से बच गए तो मुहल्ले की गंदगी से बचना बड़ा कठिन है। रहे-सहे स्कूल में पहुँचकर पारंगत हो जाते हैं। कालिज पहुँचते-पहुँचते आजकल के नवयुवकों के सोलहों संस्कार हो जाते हैं। कालिज में पहुँचकर ये लोग समाचार-पत्रों में दिए हुए औषधियों के विज्ञापन देख-देखकर दवाइयों को मँगा-मँगाकर धन नष्ट करना आरंभ करते हैं। 95 प्रतिशत की आँखें खराब हो जाती हैं। कुछ को शारीरिक दुर्बलता तथा कुछ को फैशन के विचार से ऐनक लगाने की बुरी आदत पड़ जाती है। सौन्दर्योपासना तो उनकी रग-रग में कूट-कूट कर भर जाती है। शायद ही कोई विद्यार्थी ऐसा हो जिसकी प्रेम कथाएँ प्रचलित न हों। ऐसी अजीब-अजीब बातें सुनने में आती हैं कि जिनका उल्लेख करने से भी ग्लानि होती है। यदि कोई विद्यार्थी सच्चरित्र बनने का प्रयत्न भी करता है और स्कूल या कालिज जीवन में उसे कुछ अच्छी शिक्षा भी मिल जाती है, तो परिस्थितियाँ जिनमें उसे निर्वाह करना पड़ता है, उसे सुधरने नहीं देतीं। वे विचारते हैं कि थोड़ा-सा इस जीवन का आनंद ले लें, यदि कुछ खराबी पैदा हो गई तो दवाई खाकर पौष्टिक पदार्थों का सेवन करके दूर कर लेंगे। यह उनकी बड़ी भारी भूल है। अंग्रेजी की कहावत है "ओनली फॉर वन्स एंड फॉर एवर"।

तात्पर्य यह है कि यदि एक समय कोई बात पैदा हुई, मानो सदा के लिए रास्ता खुल गया। दवाइयाँ कोई लाभ नहीं पहुँचातीं। अंडों का जूस, मछली के तेल, मांस आदि पदार्थ भी व्यर्थ सिद्ध होते हैं। सबसे आवश्यक बात चरित्र सुधारना ही होती है। विद्यार्थियों तथा उनके अध्यापकों के लिए उचित है कि वे देश की दुर्दशा पर दया करके अपने चरित्र को सुधारने का प्रयत्न करें। सार में ब्रह्मचर्य ही संसारी शक्तियों का मूल है, बिना ब्रह्मचर्य-व्रत पालन किए मनुष्य-जीवन नितांत शुष्क तथा नीरस प्रतीत होता है। विद्या, बल और बुद्धि सब ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही प्राप्त होते हैं। संसार में जितने बड़े आदमी हुए हैं, उनमें से अधिकतर ब्रह्मचर्य-व्रत के प्रताप से ही बड़े बने और सैकड़ों-हजारों वर्ष बाद भी

उनका यशगान करके मनुष्य अपने आपको कृतार्थ करते हैं। ब्रह्मचर्य की महिमा यदि जानना हो तो परशुराम, राम, लक्ष्मण, कृष्ण, भीष्म, ईसा, मेजिनी, बंदा, रामकृष्ण, दयानंद तथा राममूर्ति की जीवनियों का अध्ययन करो।

जिन विद्यार्थियों को बाल्यावस्था में कोई बुरी आदत पड़ जाती है, या जो बुरी संगत में पड़कर अपना आचरण बिगाड़ लेते हैं और फिर अच्छी शिक्षा पाने पर आचरण सुधारने का प्रयत्न करते हैं, परंतु सफल मनोरथ नहीं होते, उन्हें भी निराश नहीं होना चाहिए। मनुष्य-जीवन अभ्यासों का एक समूह है। मनुष्य के मन में भिन्न-भिन्न प्रकार के अनेक विचार तथा भाव उत्पन्न होते रहते हैं। उनमें जो उसे रुचिकर होते हैं, वे प्रथम कार्य-रूप में परिणत होते हैं। क्रिया के बार-बार होने से ऐच्छिक भाव निकल जाता है और उसमें तात्कालिक प्रेरणा उत्पन्न हो जाती है। इन तात्कालिक प्रेरक क्रियाओं को, जो पुनरावृत्ति का फल है, "अभ्यास" कहते हैं। मानवी चरित्र इन्हीं अभ्यासों द्वारा बनता है। अभ्यास से तात्पर्य आदत, स्वभाव, बान है। अभ्यास अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के होते हैं। यदि हमारे मन में निरंतर अच्छे विचार उत्पन्न हों, तो उनका फल अच्छे अभ्यास होंगे और यदि मन बुरे विचारों में लिप्त रहे, तो निश्चय ही अभ्यास बुरे होंगे। मन इच्छाओं का केन्द्र है। इन्हीं की पूर्ति के लिए मनुष्य को प्रयत्न करना पड़ता है। अभ्यासों के बनने में पैतृक संस्कार, अर्थात माता-पिता के अभ्यासों के अनुसार अनुकरण ही बच्चों के अभ्यास का सहायक होता है। दूसरे, जैसी परिस्थितियों में निवास होता है, वैसे ही अभ्यास भी पड़ते हैं। तीसरे, प्रयत्न से भी अभ्यासों का निर्माण होता है। यह शक्ति इतनी प्रबल हो सकती है कि इसके द्वारा मनुष्य पैतृक संसार तथा परिस्थितियों को भी जीत सकता है। हमारे जीवन का प्रत्येक कार्य अभ्यासों के अधीन है। यदि अभ्यासों द्वारा हमें कार्य में सुगमता न प्रतीत होती, तो हमारा जीवन बड़ा दुखमय प्रतीत होता। लिखने का अभ्यास, वस्त्र पहनना, पठन-पाठन इत्यादि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। यदि हमें प्रारंभिक समय की भाँति सदैव सावधानी से काम लेना हो, तो कितनी कठिनाई प्रतीत हो।

इसी प्रकार बालक का खड़ा होना और चलना भी है कि उस समय वह कितना कष्ट अनुभव करता है, किन्तु एक मनुष्य मीलों तक चला जाता है। बहुत लोग तो चलते-चलते नींद भी ले लेते हैं। जैसे जेल में बाहरी दीवार पर घड़ी में चाबी लगाने वाले, जिन्हें बराबर छः घंटे चलना होता है, वे प्रायः चलते-चलते सो लिया करते हैं।

मानसिक भावों को शुद्ध रखते हुए अंतःकरण को उच्च विचारों में बलपूर्वक संलग्न करने का अभ्यास करने से अवश्य सफलता मिलेगी। प्रत्येक विद्यार्थी या नवयुवक को, जोकि ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने की इच्छा रखता है, उचित है कि अपनी दिनचर्या निश्चित करे। खान-पान आदि का विशेष ध्यान रखे। महात्माओं के जीवन-चरित्र तथा चरित्र-गठन संबंधी पुस्तकों का अवलोकन करें। प्रेमालाप तथा उपन्यासों में समय नष्ट न करे। खाली समय अकेला न बैठे। जिस समय कोई बुरे विचार उत्पन्न हों, तुरंत शीतल जलपान कर घूमने लगे या किसी अपने से बड़े के पास जाकर बातचीत करने लगे। अश्लील (इश्कभरी) ग़ज़लों, शेरों तथा गानों को न पढ़े और न सुने।

विद्यार्थी प्रातःकाल सूर्य उदय होने से एक घंटा पहले शैया त्याग कर शौचादि से निवृत्त हो व्यायाम करें या वायु-सेवनार्थ बाहर मैदान में जाए। सूर्य उदय होने के पाँच-दस मिनट पूर्व स्नान से निवृत होकर यथा-विश्वास परमात्मा का ध्यान करे। सदैव कुएँ के ताजे जल से स्नान करे। यदि कुएँ का जल प्राप्त न हो तो जाड़ों में जल को थोड़ा-सा गुनगुना कर ले और गर्मियों में शीतल जल से स्नान करे। स्नान करने के पश्चात् एक खुरखुरे तौलिए या अँगोछे से शरीर खूब मले। उपासना के पश्चात् थोड़ा-सा जलपान करे। कोई फल, शुष्क मेवा, दूध अथवा सबसे उत्तम यह है कि गेहूँ का दलिया रंधवाकर यथा-रुचि मीठा या नमक डालकर खाए। फिर अध्ययन करे और दस बजे से ग्यारह बजे के मध्य में भोजन कर ले। भोजन में मांस, मछली, चरपरे, खट्टे, गरिष्ठ, बासी तथा उत्तेजक पदार्थों का त्याग करे। प्याज, लहसुन, लाल मिर्च, आम की खटाई और अधिक मसालेदार

भोजन कभी न खाए। सात्विक भोजन करे। शुष्क भोजन का भी त्याग करे। जहाँ तक हो साग-सब्जी अधिक खाए। भोजन खूब चबा-चबा कर करे। अधिक गरम या अधिक ठंडा भोजन भी वर्जित है। स्कूल अथवा कालिज से आकर थोड़ा-सा आराम करके एक घंटा लिखने का काम करके खेलने के लिए जाए। मैदान में थोड़ा-सा घूमे भी। घूमने के लिए चौक बाजार की गंदी हवा में जाना ठीक नहीं। स्वच्छ वायु का सेवन करे। संध्या समय भी शौच अवश्य जाए। थोड़ा-सा ध्यान करके हल्का-सा भोजन कर ले। रात्रि के समय साढ़े दस बजे तक पठन-पाठन करे और फिर सो जाए। सदैव खुली हवा में सोना चाहिए। बहुत मुलायम और चिकने बिस्तर पर न सोए। अधिक पाठ न करना हो तो साढ़े नौ या दस बजे सो जाए। प्रातःकाल साढ़े तीन या चार बजे उठकर कुल्ला करके शीतल जलपान करे और शौच से निवृत्त हो पठन-पाठन करे। सूर्योदय के निकट फिर नित्य की भाँति व्यायाम या भ्रमण करे। सब व्यायामों में दंड-बैठक सर्वोत्तम है। जहाँ जी चाहे, व्यायाम कर लो। यदि हो सके तो प्रोफेसर राममूर्ति की विधि से दंड-बैठक करे। प्रोफेसर साहब की रीति विद्यार्थियों के लिए लाभदायक है। थोड़े समय में ही पर्याप्त परिश्रम हो जाता है। दंड-बैठक के अलावा शीर्षासन और पद्मासन का भी अभ्यास करना चाहिए और अपने कमरे में वीरों और महात्माओं के चित्र रखने चाहिएँ।

द्वितीय खण्ड

स्वदेश-प्रेम

पूज्यपाद श्रीस्वामी सोमदेव का देहांत हो जाने के पश्चात् जब मैं अंग्रेजी के नवें दर्जे में आया, कुछ स्वदेश संबंधी पुस्तकों का अवलोकन आरंभ हुआ। शाहजहाँपुर में सेवा-समिति की नींव पं. श्रीराम वाजपेयीजी ने डाली, उसमें भी बड़े उत्साह से कार्य किया। दूसरों की सेवा का भाव हृदय में उदय हुआ। कुछ समझ में आने लगा कि वास्तव में देशवासी बड़े दुखी हैं। उसी वर्ष मेरे पड़ोसी तथा मित्र, जिनसे मेरा स्नेह अधिक था, एंट्रेंस की परीक्षा पास करके कालिज में शिक्षा पाने चले गए। कालिज की स्वतंत्र वायु में उनके हृदय में भी स्वदेश के भाव उत्पन्न हुए। उसी साल लखनऊ में अखिल भारतीय कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। मैं भी उसमें सम्मिलित हुआ। कतिपय सज्जनों से भेंट हुई। देश-दशा का कुछ अनुमान हुआ, और निश्चय हुआ कि देश के लिए कोई विशेष कार्य किया जाए। देश में जो कुछ हो रहा है उसकी उत्तरदायी सरकार ही है। भारतवासियों के दुख तथा दुर्दशा की जिम्मेदारी सरकार पर ही है, अतएव सरकार को पलटने का प्रयत्न करना चाहिए। मैंने भी इस प्रकार के विचारों में योग दिया। कांग्रेस में महात्मा तिलक के पधारने की खबर थी, इस कारण से गरम दल के अधिक व्यक्ति आए हुए थे। कांग्रेस के सभापति का स्वागत बड़ी धूमधाम से हुआ था। उसके दूसरे दिन लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की स्पेशल गाड़ी आने का समाचार मिला। लखनऊ स्टेशन पर बड़ा जमाव था। स्वागतकारिणी समिति के

सदस्यों से मालूम हुआ कि लोकमान्य का स्वागत केवल स्टेशन पर ही किया जाएगा और शहर में सवारी नहीं निकाली जाएगी जिसका कारण यह था कि स्वागतकारिणी समिति के प्रधान पं. जगतनारायणजी थे। अन्य गण्यमान सदस्यों में पं. गोकरणनाथजी तथा अन्य उदार दल वालों (माडरेटों) की संख्या अधिक थी। माडरेटों को भय था कि यदि लोकमान्य की सवारी शहर में निकाली गई तो कांग्रेस के प्रधान से भी अधिक सम्मान होगा, जिसे वे उचित न समझते थे। अतः उन सबने प्रबंध किया कि जैसे ही लोकमान्य तिलक पधारें, उन्हें मोटर में बिठाकर शहर के बाहर-बाहर निकाल ले जाएँ। इन सब बातों को सुनकर नवयुवकों को बड़ा खेद हुआ। कालेज के एक एम.ए. के विद्यार्थी ने इस प्रबंध का विरोध करते हुए कहा कि लोकमान्य का स्वागत अवश्य होना चाहिए। मैंने भी इस विद्यार्थी के कथन में सहयोग दिया। इसी प्रकार कई नवयुवकों ने निश्चय किया कि जैसे ही लोकमान्य स्पेशल रेलगाड़ी से उतरें उन्हें घेरकर गाड़ी में बिठा लिया जाए और सवारी निकाली जाए। स्पेशल रेलगाड़ी आने पर लोकमान्य सबसे पहले उतरे। स्वागतकारिणी के सदस्यों ने कांग्रेस के स्वयं-सेवकों का घेरा बनाकर लोकमान्य को मोटर में जा बिठाया। मैं तथा एक एम.ए. का विद्यार्थी मोटर के आगे लेट गए। सब कुछ समझाया गया, मगर किसी की एक न सुनी। हम लोगों की देखा-देखी और कई नवयुवक भी मोटर के सामने आकर बैठ गए। उस समय मेरे उत्साह का यह हाल था कि मुँह से बात न निकलती थी, केवल रोता था और कहता था, "मोटर मेरे ऊपर से निकाल ले जाओ।" स्वागतकारिणी के सदस्यों से कांग्रेस के प्रधान को ले जाने वाली गाड़ी माँगी, उन्होंने देना स्वीकार न किया। एक नवयुवक ने मोटर का टायर काट दिया। लोकमान्य जी बहुत कुछ समझाते किन्तु वहाँ सुनता कौन? एक किराए की गाड़ी से घोड़े खोलकर लोकमान्य के पैरों पर सिर रख उन्हें उसमें बिठाया और सबने मिलकर हाथों से गाड़ी खींचनी शुरु की। इस प्रकार लोकमान्य का इस धूमधाम से स्वागत हुआ कि किसी नेता की उतने जोरों से सवारी न निकाली गई। लोगों के उत्साह का

यह हाल था कि कहते थे कि एक बार गाड़ी में हाथ लगा लेने दो, जीवन सफल हो जाए। लोकमान्य पर फूलों की जो वर्षा की जाती थी, उसमें से जो फूल नीचे गिर जाते थे उन्हें उठाकर लोग पल्ले में बाँध लेते थे। जिस स्थान पर लोकमान्य के पैर पड़ते, वहाँ की धूल सबके माथों पर दिखाई देती। कुछ उस धूल को भी अपने रुमाल में बाँध लेते थे। इस स्वागत से माडरेटों की बड़ी भद्द हुई।

क्रांतिकारी आंदोलन

कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर लखनऊ में ही मालूम हुआ कि एक गुप्त समिति है, जिसका मुख्य उद्देश्य क्रांतिकारी आंदोलन में भाग लेना है। यहीं से क्रांतिकारी समिति की चर्चा सुनकर कुछ समय बाद मैं भी क्रांतिकारी समिति के कार्य में योग देने लगा। अपने एक मित्र द्वारा क्रांतिकारी समिति का सदस्य हो गया। थोड़े ही दिनों में मैं कार्यकारिणी का सदस्य बना लिया गया। समिति में धन की बहुत कमी थी, उधर हथियारों की भी जरूरत थी। जब घर वापस आया, तब विचार हुआ कि एक पुस्तक प्रकाशित की जाए और उसमें जो लाभ हो उससे हथियार खरीदे जाएँ। पुस्तक प्रकाशित कराने के लिए धन कहाँ से आए ? विचार करते-करते मुझे एक चाल सूझी। मैंने अपनी माताजी से कहा कि मैं कुछ रोजगार करना चाहता हूँ, उसमें अच्छा लाभ होगा। यदि रुपये दे सकें तो बड़ा अच्छा हो। उन्होंने 200 रुपये दिए। "अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली" नामक पुस्तक लिखी जा चुकी थी। प्रकाशित होने का प्रबंध हो गया। थोड़े रुपये की जरूरत और पड़ी, मैंने माताजी से 200 रुपये और लिए। पुस्तक की बिक्री हो जाने पर माताजी के रुपये पहले चुका दिए। लगभग 200 रुपये और बचे। पुस्तकें अभी बिकने के लिए बहुत बाकी थीं। उसी समय "देशवासियों से निवेदन" नामक एक पर्चा छपवाया गया, क्योंकि पं. गेंदालालजी, ब्रह्मचारीजी के दल सहित ग्वालियर में गिरफ्तार हो गए थे। अब सब विद्यार्थियों ने अधिक उत्साह के साथ काम करने की प्रतिज्ञा की। पर्चे कई जिलों में लगाए गए और

बाँटे गए। पर्चे तथा "अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली" पुस्तक दोनों संयुक्त प्रांत की सरकार ने जब्त कर लिए।

हथियारों की खरीद

अधिकतर लोगों का विचार है कि देशी राज्यों में हथियार (रिवाल्वर, पिस्तौल तथा राइफलें इत्यादि) सब कोई रखता है, और बंदूक आदि पर लाइसेंस नहीं होता। अतएव इस प्रकार के अस्त्र बड़ी सुगमता से प्राप्त हो सकते हैं। देशी राज्यों में हथियारों पर कोई लाइसेंस नहीं, यह बात बिल्कुल ठीक है और हर एक को बंदूक आदि रखने की आज़ादी भी है। किंतु कारतूसी हथियार बहुत कम लोगों के पास रहते हैं, जिसका कारण यह है कि कारतूस या विलायती बारूद खरीदने पर पुलिस में सूचना देनी होती है। राज्य में तो कोई ऐसी दुकान नहीं होती, जिस पर कारतूस या कारतूसी हथियार मिल सकें। यहाँ तक कि विलायती बारूद और बंदूक की टोपी भी नहीं मिलती, क्योंकि ये सब चीजें बाहर से मँगानी पड़ती हैं। जितनी चीजें इस प्रकार की बाहर से मँगाई जाती हैं, उनके लिए रेजिडेंट (गवर्नमेंट का प्रतिनिधि, जो रियासतों में रहता है) की आज्ञा लेनी पड़ती है। बिना रेजिडेंट की मंजूरी के हथियारों संबंधी कोई चीज बाहर से रियासत में नहीं आ सकती। इस कारण इस खटखट से बचने के लिए रियासत में ही टोपीदार बंदूकें बनती हैं और देशी बारूद भी वहीं के लोग शोरा, गंधक तथा कोयला मिलाकर बना लेते हैं। बंदूक की टोपी चुरा-छिपाकर मँगा लेते हैं। नहीं तो टोपी के स्थान पर भी मनसल और पुटाश अलग-अलग पीसकर दोनों को मिलाकर उसी से काम चलाते हैं। हथियार रखने की आज़ादी होने पर भी गाँवों में किसी एक-दो धनी या जमींदार के यहाँ टोपीदार बंदूक या टोपीदार छोटे पिस्तौल होते हैं, जिसमें ये लोग रियासत की बनी हुई बारूद काम में लाते हैं। यह बारूद बरसात में सील खा जाती है और काम नहीं देती। एक बार मैं अकेला रिवाल्वर खरीदने गया। उस समय मैं समझता था कि हथियारों की दूकान

होगी, सीधे जाकर दाम देंगे और रिवाल्वर लेकर चले आएँगे। प्रत्येक दूकान देखी, कहीं किसी पर बंदूक आदि का विज्ञापन या कोई दूसरा निशान न पाया। फिर एक ताँगे पर सवार होकर सब शहर घूमा। ताँगे वाले ने पूछा कि क्या चाहिए।

मैंने उससे डरते-डरते अपना उद्देश्य कहा। उसी ने दो-तीन दिन घूम-फिरकर एक टोपीदार रिवाल्वर खरीदवा दिया और देशी बनी हुई बारूद एक दूकान से दिला दी। मैं कुछ जानता तो था नहीं, एकदम दो सेर बारूद खरीदी, जो घर पर संदूक में रखे-रखे बरसात में सील खाकर पानी हो गई। मुझे बड़ा दुख हुआ। दूसरी बार जब मैं क्रांतिकारी समिति का सदस्य हो चुका था, तब दूसरे सहयोगियों की राय से दो सौ रुपये लेकर हथियार खरीदने गया। इस बार मैंने बहुत प्रयत्न किया तो एक कबाड़ी की-सी दूकान पर कुछ तलवारें, खंजर, कटार तथा दो-चार टोपीदार बंदूकें रखी देखीं। मैंने बड़ा साहस करके उससे पूछा कि क्या आप ये चीज़ें बेचते हैं, उसने जब हाँ में उत्तर दिया तो मैंने दो-चार चीज़ें देखीं। दाम पूछे। इसी प्रकार वार्तालाप करके पूछा कि क्या आप कारतूसी हथियार नहीं बेचते या और कहीं नहीं बिकते। तब उसने सब विवरण सुनाया। उस समय उसके पास टोपीदार एक नली के छोटे-छोटे दो पिस्तौल थे। मैंने वे दोनों खरीद लिए। एक कटार भी खरीदी। उसने वादा किया कि यदि आप फिर आएँ तो कुछ कारतूसी हथियार जुटाने का प्रयत्न किया जाए। लालच बुरी बला है, इस कहावत के अनुसार तथा इसलिए भी कि हम लोगों को कोई दूसरा ऐसा जरिया भी न था, जहाँ से हथियार मिल सकते, मैं कुछ दिनों बाद फिर गया। इस समय उसी ने एक बड़ा सुंदर कारतूसी रिवाल्वर दिया। कुछ पुराने कारतूस दिए। रिवाल्वर था तो पुराना, किन्तु बड़ा ही उत्तम था। दाम उसके नए के बराबर देने पड़े। अब उसे विश्वास हो गया कि यह हथियारों के खरीदार हैं। उसने प्राणपण से चेष्टा की और कई रिवाल्वर तथा दो-तीन राइफलें जुटाईं। उसे भी अच्छा लाभ हो जाता था। प्रत्येक वस्तु पर वह बीस-तीस रुपये मुनाफा ले लेता था। किसी-किसी चीज़ पर दूना नफा खा लेता था।

इसके बाद हमारी संस्था के दो-तीन सदस्य मिलकर गए। दूकानदार ने भी हमारी उत्कट इच्छा को देखकर इधर-उधर से पुराने हथियारों को खरीदकर उनकी मरम्मत की, और नया-सा करके हमारे हाथ बेचना शुरू किया। खूब ठगा। हम लोग कुछ जानते नहीं थे। इस प्रकार अभ्यास करने से कुछ नया पुराना समझने लगे। एक दूसरे सिक्लीगर से भेंट हुई। वह स्वयं कुछ नहीं जानता था, किन्तु उसने वचन दिया कि वह कुछ रईसों से हमारी भेंट करा देगा। उसने एक रईस से मुलाकात कराई जिसके पास एक रिवाल्वर था। रिवाल्वर खरीदने की हमने इच्छा प्रकट की। उन महाशय ने उस रिवाल्वर के डेढ़ सौ रुपये माँगे। रिवाल्वर नया था। बड़े कहने-सुनने पर सौ कारतूस उन्होंने दिए और 155 रुपये लिए। 150 रुपये उन्होंने स्वयं लिए और 5 रुपये सिक्लीगर को कमीशन के तौर पर देने पड़े। रिवाल्वर चमकता हुआ नया था, समझे अधिक दामों का होगा। खरीद लिया। विचार हुआ कि इस प्रकार ठगे जाने से काम न चलेगा। किसी प्रकार कुछ जानने का प्रयत्न किया जाए। बड़ी कोशिश के बाद कलकत्ता, बंबई से बंदूक-विक्रेताओं की लिस्टें मँगाकर देखीं, देखकर आँखें खुल गईं। जितने रिवाल्वर या बंदूकें हमने खरीदे थे, एक को छोड़ सबके दुगने दाम दिए थे। 155 रुपये के रिवाल्वर के दाम केवल 30 रुपये ही थे और 10 रुपये के सौ कारतूस, इस प्रकार कुल सामान 40 रुपये का था, जिसके बदले 155 रुपये देने पड़े। बड़ा खेद हुआ। करें तो क्या करें। और कोई दूसरा जरिया भी तो न था।

कुछ समय पश्चात कारखानों की लिस्टें लेकर तीन-चार सदस्य मिलकर गए। खूब जाँच-खोज की। किसी प्रकार रियासत की पुलिस को पता चल गया। एक खुफिया पुलिस वाला मुझे मिला, उसने कई हथियार दिलाने का वादा किया, और वह मुझे पुलिस इंस्पेक्टर के घर ले गया। दैवात् उस समय पुलिस इंस्पेक्टर घर पर मौजूद न थे। उनके द्वार पर एक पुलिस का सिपाही बैठा था, जिसे मैं भली-भाँति जानता था। मुहल्ले में खुफिया पुलिस वाले की आँख बचाकर पूछा कि अमुक घर किसका है ? मालूम हुआ पुलिस इंस्पेक्टर का। मैं जैसे-तैसे निकल

आया। और अतिशीघ्र अपने ठहरने का स्थान बदल लिया। उस समय हम लोगों के पास दो राइफलें, चार रिवाल्वर तथा दो पिस्तौल खरीदे हुए मौजूद थे। किसी प्रकार उस खुफिया पुलिस वाले को एक कारीगर से, जहाँ पर हम अपने हथियारों की मरम्मत कराते थे, मालूम हुआ कि हम में से एक व्यक्ति उसी दिन जाने वाला था, उसने चारों ओर स्टेशन पर तार दिलवाए। रेलगाड़ियों की तलाशी ली गई। पर पुलिस की असावधानी के कारण हम बाल-बाल बच गए।

रुपये की चपत बुरी होती है। एक पुलिस सुपरिंटेंडेंट के पास एक राइफल थी। मालूम हुआ वह बेचते हैं। हम लोग पहुँचे। अपने आप को रियासत का रहने वाला बतलाया। उन्होंने निश्चय करने के लिए बहुत से प्रश्न पूछे, क्योंकि हम लड़के तो थे ही। पुलिस सुपरिंटेंडेंट पेंशनभोगी मुसलमान थे। हमारी बातों पर उन्हें पूर्ण विश्वास न हुआ। कहा कि अपने थानेदार से लिखा लाओ कि वह तुम्हें जानता है। मैं गया। जिस स्थान का रहने वाला बताया था, वहाँ के थानेदार का नाम मालूम किया, और एक-दो जमींदारों के नाम मालूम किए। फिर एक पत्र लिखा कि मैं उस स्थान के रहने वाले अमुक जमींदार का पुत्र हूँ और वे लोग मुझे भली भाँति जानते हैं। उसी पत्र पर जमींदारों के हिन्दी में और पुलिस के दारोगा के अंग्रेजी में हस्ताक्षर बना, पत्र ले जाकर पुलिस कप्तान को दिया। बड़े गौर से देखने के बाद वह बोले, "मैं थाने में दर्याफ्त कर लूँ। तुम्हें भी थाने चलकर इत्तला देनी होगी कि राइफल खरीद रहे हैं।" हम लोगों ने कहा कि हमने आपके इत्मीनान के लिए इतनी मुसीबत झेली, दस-बारह रुपये खर्च किए, अगर अब भी विश्वास न हो तो मजबूरी है। हम पुलिस में नहीं जाएँगे। राइफल के दाम लिस्ट में 180 रुपये लिखे थे, वह 250 रुपये माँगते थे, साथ में दो सौ कारतूस भी दे रहे थे। कारतूस भरने का सामान भी देते थे, जो लगभग 50 रुपये का होता था। इस प्रकार पुरानी राइफल के नई के समान दाम माँगते थे। हम लोग भी 250 रुपये देते थे। पुलिस कप्तान ने भी सोचा कि पूरे दाम मिल रहे हैं। स्वयं वृद्ध हो चुके थे। कोई पुत्र भी नहीं था। अतएव 250 रुपये लेकर

राइफल दे दी। पुलिस में कुछ पूछने न गए। उन्हीं दिनों राज्य के एक उच्च पदाधिकारी के नौकर से मिलकर उनके यहाँ से रिवाल्वर चोरी कराया। जिसके दाम लिस्ट में 75 रुपये थे, उसे 100 रुपये में खरीदा। एक माउजर पिस्तौल भी चोरी कराया, जिसके दाम लिस्ट में उस समय 200 रुपये थे। हमें माउजर पिस्तौल की प्राप्ति की बड़ी इच्छा थी। बड़े भारी प्रयत्न के बाद यह माउजर पिस्तौल मिला, जिसका मूल्य 300 रुपये देना पड़ा। कारतूस एक भी न मिला। हमारे पुराने मित्र कबाड़ी महोदय के पास माउजर पिस्तौल के पचास कारतूस पड़े थे। उन्होंने बड़ा काम दिया। हममें से किसी ने भी पहले माउजर पिस्तौल देखा भी न था। कुछ न समझ सके कि कैसे प्रयोग किया जाता है। बड़े कठिन परिश्रम से उसका प्रयोग समझ में आया।

हमने तीन राइफलें, एक बारह बोर की दोनाली कारतूसी बंदूक, दो टोपीदार बंदूकें, तीन टोपीदार रिवाल्वर और पाँच कारतूसी रिवाल्वर खरीदे। प्रत्येक हथियार के साथ पचास या सौ कारतूस भी ले लिए। इन सब में लगभग चार हजार रुपये व्यय हुए। कुछ कटार तथा तलवारें इत्यादि भी खरीदीं थीं।

मैनपुरी षड्यंत्र

इधर तो हम लोग अपने कार्य में व्यस्त थे, उधर मैनपुरी के एक सदस्य पर लीडरी का भूत सवार हुआ। उन्होंने अपना पृथक संगठन किया। कुछ अस्त्र-शस्त्र भी एकत्रित किए। धन की कमी की पूर्ति के लिए एक सदस्य से कहा कि अपने किसी परिवार के सदस्य के यहाँ डाका डलवाओ। उस सदस्य ने कोई उत्तर न दिया। उसे आज्ञापत्र दिया गया और मार डालने की धमकी दी गई। वह पुलिस के पास गया। मामला खुला। मैनपुरी में धर-पकड़ शुरू हो गई। हम लोगों को भी समाचार मिला। दिल्ली में कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला था। विचार किया गया कि "अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली" नामक पुस्तक, जो यू.पी. सरकार ने जब्त कर ली थी, कांग्रेस के अवसर पर बेच दी जाए। कांग्रेस के अधिवेशन

के उत्सव पर मैं शाहजहाँपुर की सेवा-समिति के साथ अपनी एम्बुलेंस की टोली लेकर गया था। एम्बुलेंस वालों को प्रत्येक स्थान पर बिना रोक जाने की आज्ञा थी। अधिवेशन पंडाल के बाहर खुले रूप में नवयुवक यह कह कर पुस्तक बेच रहे थे– "यू.पी. में जब्त किताब "अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली"।" खुफिया पुलिस वालों ने कांग्रेस का कैम्प घेर लिया। सामने ही आर्यसमाज का कैम्प था। वहाँ पर पुलिस ने पुस्तक विक्रेताओं की तलाशी लेनी आरंभ कर दी। मैंने कांग्रेस कैम्प पर अपने स्वयंसेवक इसलिए छोड़ दिए कि वे बिना स्वागत समिति के मंत्री या प्रधान की आज्ञा पाए किसी पुलिस वाले को कैम्प में न घुसने दें। आर्यसमाज के कैम्प में गया। सब पुस्तकें एक टेंट में जमा थीं। मैंने अपने ओवरकोट में सब पुस्तकें लपेटीं, जो लगभग दो सौ होंगी और उन्हें कंधे पर डालकर पुलिस वालों के सामने से निकला। मैं वर्दी पहने था, टोप लगाए हुए था। एम्बुलेंस का बड़ा-सा लाल बिल्ला मेरे हाथ पर लगा हुआ था, किसी ने कोई सन्देह भी न किया और पुस्तकें बच गईं।

दिल्ली कांग्रेस से लौटकर शाहजहाँपुर आए। वहाँ भी पकड़-धकड़ शुरु हुई। हम लोग वहाँ से चलकर दूसरे शहर के एक मकान में ठहरे हुए थे। रात्रि के समय मकान मालिक ने बाहर से मकान में ताला लगा दिया। ग्यारह बजे के लगभग हमारा एक साथी बाहर से आया। उसने बाहर से ताला पड़ा देख पुकारा। हम लोगों को भी संदेह हुआ। सबके सब दीवार पर से उतर कर मकान छोड़कर चल दिए। अंधेरी रात थी। थोड़ी दूर गए थे कि जोर की आवाज़ आई, "खड़े हो जाओ कौन जाता है ?" हम लोग सात-आठ थे। समझे कि घिर गए। कदम उठाना ही चाहते थे कि फिर आवाज़ आई, "खड़े हो जाओ, नहीं तो गोली मारते हैं।" हम लोग खड़े हो गए। थोड़ी देर में एक पुलिस के दारोगा बंदूक हमारी तरफ किए हुए, रिवाल्वर कंधे में लटकाए, कई सिपाहियों को लिए हुए आ पहुँचे। पूछा– "कौन हो ? कहाँ जाते हो ?" हम लोगों ने कहा– "विद्यार्थी हैं, स्टेशन जाते हैं।" "कहाँ जाओगे ?" "लखनऊ।" उस समय रात के दो बजे थे।

लखनऊ की गाड़ी पाँच बजे जाती थी। दारोगा जी को शक हुआ। लालटेन आई, हम लोगों के चेहरे रोशनी में देखकर उनका शक जाता रहा। कहने लगे– "रात के समय लालटेन लेकर चला कीजिए। गलती हुई, माफ कीजिए।" हम लोग भी सलाम झाड़कर चलते बने। एक बाग में फूँस की मड़ैया पड़ी थी। उसमें जा बैठे। पानी बरसने लगा। मूसलाधार पानी गिरा। सब कपड़े भीग गए। जमीन पर भी पानी भर गया। जनवरी का महीना था। खूब जाड़ा पड़ रहा था। रातभर भीगते और ठिठुरते रहे। बड़ा कष्ट हुआ। प्रातःकाल धर्मशाला में जाकर कपड़े सुखाए। दूसरे दिन शाहजहाँपुर आकर, बंदूकें जमीन में गाड़कर प्रयाग पहुँचे।

विश्वासघात

प्रयाग (इलाहाबाद) की एक धर्मशाला में दो-तीन दिन निवास करके विचार किया गया कि एक व्यक्ति बहुत कमजोर है, यदि वह पकड़ा गया तो सब भेद खुल जाएगा, अतः उसे मार दिया जाए। मैंने कहा– "मनुष्य-हत्या ठीक नहीं।" पर अंत में निश्चय हुआ कि कल चला जाए और उसकी हत्या कर दी जाए। मैं चुप हो गया। हम लोग चार सदस्य साथ थे। हम चारों तीसरे पहर झूँसी का किला देखने गए। जब लौटे तब संध्या हो चुकी थी। उसी समय गंगा पार करके यमुना-तट पर गए। शौचादि से निवृत्त होकर मैं संध्या समय उपासना करने के लिए रेती पर बैठ गया। एक महाशय ने कहा– "यमुना के निकट बैठो।" मैं तट से दूर एक ऊँचे स्थान पर बैठा था। मैं वहीं बैठा रहा। वे तीनों भी मेरे पास ही आकर बैठ गए। मैं आँखें बंद किए ध्यान कर रहा था। थोड़ी देर में खट से आवाज़ हुई। समझा कि साथियों में से कोई कुछ कर रहा होगा। तुरंत ही फायर हुआ। गोली सन से मेरे कान के पास से निकल गई। मैं समझ गया कि मेरे ऊपर ही फायर हुआ है। मैं रिवाल्वर निकालता हुआ आगे को बढ़ा। पीछे फिर कर देखा, वह महाशय माउजर हाथ में लिए मेरे ऊपर गोली चला रहे हैं। कुछ दिन पहले मुझसे उनका झगड़ा हो चुका था, किन्तु बाद में समझौता हो

गया था। फिर भी उन्होंने यह कार्य किया। मैं भी सामना करने को प्रस्तुत हुआ। तीसरा फायर करके वह भाग खड़े हुए। उनके साथ प्रयाग में ठहरे हुए दो सदस्य और भी थे। वे तीनों भाग गए। मुझे देर इसलिए हुई कि मेरा रिवाल्वर चमड़े के खोल में रखा था। यदि आधा मिनट और उनमें कोई भी खड़ा रह जाता तो मेरी गोली का निशाना बन जाता। जब सब भाग गए, तब मैं गोली चलाना व्यर्थ जान, वहाँ से चला आया। मैं बाल-बाल बच गया। मुझसे दो गज के फासले पर से माउजर पिस्तौल से गोलियाँ चलाई गईं और उस अवस्था में जबकि मैं बैठा हुआ था। मेरी समझ में नहीं आया कि मैं बच कैसे गया। पहला कारतूस फटा नहीं। तीन फायर हुए। मैं गद्‌गद् होकर परमात्मा को स्मरण करने लगा। खुशी में मुझे मूर्छा आ गई। मेरे हाथ से रिवाल्वर तथा खोल दोनों गिर गए। यदि उस समय कोई निकट होता तो मुझे आराम से मार सकता था। मेरी यह दशा लगभग एक मिनट तक रही होगी कि मुझसे किसी ने कहा, "उठ।" मैं उठा। रिवाल्वर उठा लिया। खोल उठाने का स्मरण ही न रहा। 22 जनवरी की घटना है। मैं केवल एक कोट और एक तहमद पहने था। बाल बढ़ रहे थे। नंगे सिर, पैर में जूता भी नहीं। ऐसी हालत में कहाँ जाऊँ ? अनेक विचार उठ रहे थे।

इन्हीं विचारों में डूबा यमुना-तट पर बड़ी देर तक घूमता रहा। ध्यान आया कि धर्मशाला चलकर ताला तोड़ सामान निकाल लूँ। फिर सोचा कि धर्मशाला जाने से गोली चलेगी, व्यर्थ में खून होगा। अभी ठीक नहीं। अकेले बदला लेना उचित नहीं। और कुछ साथियों को लेकर फिर बदला लिया जाएगा। मेरे एक साधारण मित्र प्रयाग में रहते थे। उनके पास जाकर बड़ी मुश्किल से एक चादर ली और रेल से लखनऊ आया। लखनऊ आकर बाल बनवाए। धोती-जूता खरीदे, क्योंकि मेरे पास रुपये थे। रुपये न भी होते तो भी मैं सदैव जो चालीस-पचास रुपये की सोने की अंगूठी पहने रहता था, उसे काम में ला सकता था। वहाँ से आकर अन्य सदस्यों से मिलकर सब विवरण कह सुनाया। कुछ दिन जंगल में रहा। इच्छा थी कि संन्यासी हो जाऊँ। संसार कुछ नहीं। बाद में फिर माताजी के

पास गया। उन्हें सब कह सुनाया। उन्होंने मुझे ग्वालियर जाने का आदेश दिया। थोड़े दिनों में माता-पिता सभी दादीजी के भाई के यहाँ आ गए। मैं भी वहाँ पहुँच गया।

मैं हर वक्त यही विचार किया करता कि मुझे बदला अवश्य लेना चाहिए। एक दिन प्रतिज्ञा करके रिवाल्वर लेकर शत्रु की हत्या करने की इच्छा से गया भी, किन्तु सफलता न मिली। इसी प्रकार की उधेड़बुन में मुझे ज्वर आने लगा। कई महीनों तक बीमार रहा। माताजी मेरे विचारों को समझ गईं। माताजी ने बड़ी तसल्ली दी। कहने लगीं कि, प्रतिज्ञा करो कि तुम अपनी हत्या की चेष्टा करने वालों को जान से न मारोगे। मैंने प्रतिज्ञा करने में आनाकानी की, तो वह कहने लगीं कि मैं मातृऋण के बदले में प्रतिज्ञा कराती हूँ, क्या जवाब है ? मैंने कहा– "मैं उनसे बदला लेने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ।" माताजी ने मुझे बाध्य कर मेरी प्रतिज्ञा भंग करवाई। अपनी बात पक्की रखी। मुझे ही सिर नीचा करना पड़ा। उस दिन से मेरा ज्वर कम होने लगा और मैं अच्छा हो गया।

भाग जाने की दशा

मैं गाँव में गाँववासियों की भाँति उसी प्रकार के कपड़े पहनकर रहने लगा। खेती भी करने लगा। देखने वाले अधिक-से-अधिक इतना समझ सकते थे कि मैं शहर में रहा हूँ, सम्भव है कुछ पढ़ा भी होऊँ। खेती के कामों में मैंने विशेष ध्यान दिया। शरीर तो हृष्ट-पुष्ट था ही, थोड़े ही दिनों में अच्छा-खासा किसान बन गया। उस कठोर भूमि में खेती करना कोई सरल काम नहीं। बबूल, नीम के अतिरिक्त कोई एक-दो आम के वृक्ष कहीं भले ही दिखाई दे जाएँ। बाकी वह नितांत मरुभूमि (रेगिस्तान) है। खेत में जाता था। थोड़ी देर में ही झरबेरी के काँटों से पैर भर जाते। पहले-पहले तो बड़ा कष्ट प्रतीत हुआ। कुछ समय बाद अभ्यास हो गया। जितना खेत उस क्षेत्र का एक बलिष्ठ पुरुष दिन-भर में जोत सकता था, उतना मैं भी जोत लेता था। मेरा चेहरा बिल्कुल काला पड़ गया।

थोड़े दिनों के लिए मैं शाहजहाँपुर की ओर घूमने आया तो कुछ लोग मुझे पहचान भी न सके। मैं रात को शाहजहाँपुर पहुँचा। गाड़ी छूट गई। दिन के समय पैदल जा रहा था कि एक पुलिस वाले ने पहचान लिया। वह और पुलिस वालों को लेने के लिए गया। मैं भागा, पहले दिन का ही थका हुआ था। लगभग बीस मील पहले दिन पैदल चला था। उस दिन भी पैंतीस मील पैदल चलना पड़ा।

मेरे माता-पिता ने सहायता की। मेरा समय अच्छी प्रकार व्यतीत हो गया। माताजी की पूँजी तो मैंने नष्ट कर दी। पिताजी से सरकार की ओर से कहा गया कि लड़के की गिरफ्तारी वारंट की पूर्ति के लिए लड़के का हिस्सा, जो उसके दादा की जायदाद होगी, नीलाम किया जाएगा। पिताजी घबराकर दो हजार रुपये का मकान आठ सौ में तथा और दूसरी चीजें भी थोड़े दामों में बेचकर शाहजहाँपुर छोड़कर भाग गए। दो बहनों का विवाह हुआ। जो कुछ रहा-बचा था, वह भी व्यय हो गया। माता-पिता की हालत फिर निर्धनों-जैसी हो गई। समिति के जो दूसरे सदस्य भागे हुए थे उनकी बहुत बुरी दशा हुई। महीनों चनों पर ही समय काटना पड़ा। दो-चार रुपये जो मित्रों तथा सहायकों से मिल जाते थे, उन्हीं पर गुजर होता था। पहनने के कपड़े तक न थे। विवश होकर रिवाल्वर तथा बंदूकें बेचीं, तब दिन कटे। किसी से कुछ कह भी न सकते थे और गिरफ्तारी के भय के कारण कोई प्रबंध या नौकरी भी न कर सकते थे।

उसी दशा में मुझे व्यवसाय करने की सूझी। मैंने अपने सहपाठी तथा मित्र श्री सुशील चंद्र सेन, जिनका देहांत हो चुका था, की स्मृति में बंगला भाषा का अध्ययन किया। मेरे छोटे भाई का जन्म हुआ तो मैंने उसका नाम सुशील चंद रखा। मैंने विचारा कि एक पुस्तकमाला निकालूँ। लाभ भी होगा। कार्य भी सरल है। बंगला से हिन्दी में पुस्तकों का अनुवाद करके प्रकाशित करवाऊँगा। अनुभव कुछ भी नहीं था। बंगला पुस्तक "निहिलिस्ट रहस्य" का अनुवाद प्रारंभ कर दिया। जिस प्रकार अनुवाद किया, उसका स्मरण कर कई बार हँसी आ जाती है।

कई बैल, गाय तथा भैंस लेकर ऊसर में चराने के लिए जाया करता था। खाली बैठा रहना पड़ता था, अतएव कापी-पेंसिल साथ ले जाता और पुस्तक का अनुवाद किया करता था। पशु जब कहीं दूर निकल जाते तब अनुवाद छोड़ लाठी लेकर उन्हें हकारने जाया करता था। कुछ समय के लिए एक साधु की कुटी पर जाकर रहा। वहाँ अधिक समय अनुवाद करने में व्यतीत करता था। खाने के लिए आटा ले जाता था। चार-पाँच दिन के लिए इकट्ठा आटा रखता था। भोजन स्वयं पका लेता था। जब पुस्तक ठीक हो गई, तो "सुशील माला" के नाम से ग्रंथमाला निकाली। पुस्तक का नाम "बोलशेविकों की करतूत" रखा। दूसरी पुस्तक "मन की लहर" छपवाई। इस व्यवसाय में लगभग पाँच सौ रुपये की हानि हुई। जब राजकीय घोषणा हुई और राजनैतिक कैदी छोड़े गए, तब शाहजहाँपुर आकर कोई व्यवसाय करने का विचार हुआ, ताकि माता-पिता की कुछ सेवा हो सके। विचार किया करता था कि इस जीवन में अब फिर कभी आज़ादी से शाहजहाँपुर विचरण न कर सकूँगा, पर परमात्मा की लीला अपार है। वे दिन आए। मैं पुनः शाहजहाँपुर का निवासी हुआ।

पंडित गेंदालाल दीक्षित

आपका जन्म यमुना-तट पर बटेश्वर के निकट "मई" गाँव में हुआ था। आपने दसवाँ दर्जा अंग्रेजी का पास किया था। आप जब औरैया जिला इटावा में डी.ए.वी. स्कूल में अध्यापक थे, तब आपने शिवाजी समिति की स्थापना की थी, जिसका उद्देश्य था शिवाजी की भाँति दल बनाकर धन एकत्र करना और उससे हथियार खरीदना और उसे दल में बाँटना। इसकी सफलता के लिए आप रियासत से हथियार ला रहे थे जो कुछ नवयुवकों की असावधानी के कारण आगरा में स्टेशन के निकट पकड़ लिए गए थे। आप बड़े वीर तथा उत्साही थे। शांत बैठना जानते ही न थे। नवयुवकों को सदैव कुछ-न-कुछ उपदेश देते रहते थे। एक-एक

गेंदालाल दीक्षित

सप्ताह तक बूट तथा वर्दी न उतारते थे। जब आप ब्रह्मचारी जी के पास सहायता लेने गए, तो दुर्भाग्यवश गिरफ्तार कर लिए गए। ब्रह्मचारी के दल ने अंग्रेजी राज्य में कई डाके डाले थे। डाके डालकर ये लोग चंबल के बीहड़ों में छिप जाते थे। सरकारी राज्य की ओर से ग्वालियर महाराज को लिखा गया। इस दल के पकड़ने का प्रबंध किया गया। सरकार ने तो हिन्दुस्तानी फौज भी भेजी थी, जो आगरा जिले में चंबल के किनारे बहुत दिनों तक पड़ी रही। पुलिस सवार तैनात किए, फिर भी ये लोग भयभीत न हुए। विश्वासघात से पकड़े गए। इन्हीं का एक आदमी पुलिस ने मिला लिया। डाका डालने के लिए दूर एक स्थान निश्चय किया गया, जहाँ तक जाने के लिए एक पड़ाव देना पड़ता था। चलते-चलते सब थक गए, पड़ाव दिया गया। जो आदमी पुलिस से मिला हुआ था, उसने भोजन लाने को कहा, क्योंकि उसके किसी संबंधी का मकान निकट था। वह पूड़ी बनवाकर लाया। सब पूड़ी खाने लग गए। ब्रह्मचारी जी जो सदैव अपने हाथ से बनाकर भोजन करते थे या आलू अथवा घुइयाँ भूनकर खा लेते थे, उन्होंने भी उस दिन पूड़ी खाना स्वीकार किया। सब भूखे तो थे ही, खाने लगे। ब्रह्मचारी जी ने भी एक पूड़ी ही खाई। उनकी जबान ऐंठने लगी और जो अधिक खा गए थे, वे गिर गए। पूड़ी लाने वाला पानी लेने के बहाने चल दिया। पूड़ियों में विष मिला हुआ था। ब्रह्मचारी जी ने बंदूक उठाकर

पूड़ी लाने वाले पर गोली चलाई। ब्रह्मचारी जी का गोली चलाना था कि चारों ओर से गोली चलने लगीं। पुलिस छिपी हुई थी। गोली चलने से ब्रह्मचारी जी को कई गोलियाँ लगीं। तमाम शरीर घायल हो गया। पं. गेंदालालजी की आँख में एक छर्रा लगा। बाई आँख जाती रही। कुछ आदमी जहर के कारण मरे, कुछ गोली से मारे गए। इस प्रकार 80 आदमियों में से 25-30 जान से मारे गए। सब पकड़ कर ग्वालियर के किले में बंद कर दिए गए। किले में हम लोग जब पंडित जी से मिले, तब चिट्ठी भेजकर उन्होंने हमको सब हाल बताया। एक दिन किले में हम लोगों पर भी संदेह हो गया था, बड़ी कठिनता से एक अधिकारी की सहायता से हम लोग निकल सके।

जब मैनपुरी षड्यंत्र का अभियोग चला, पंडित गेंदालालजी को सरकार ने ग्वालियर राज्य से मँगाया। ग्वालियर के किले का जलवायु बड़ा ही हानिकारक था। पंडितजी को क्षय (टी.बी.) रोग हो गया था। मैनपुरी स्टेशन से जेल जाते समय ग्यारह बार रास्ते में बैठकर, जेल पहुँचे। पुलिस ने जब हाल पूछा तो उन्होंने कहा– "बालकों को क्यों गिरफ्तार किया है ? मैं हाल बताऊँगा।" पुलिस को विश्वास हो गया। आपको जेल से निकालकर दूसरे सरकारी गवाहों के निकट रख दिया। वहाँ पर सब विवरण जान रात्रि के समय एक और सरकारी गवाह को लेकर पंडितजी भाग खड़े हुए। भागकर एक गाँव में एक कोठरी में ठहरे। साथी कुछ काम के लिए बाजार गया था। पंडितजी उसी कोठरी में तीन दिन बिना अन्न-जल बंद रहे। समझे कि साथी किसी आपत्ति में फँस गया होगा, अंत में किसी प्रकार जंजीर खुलवाई। रुपये वह सब साथ ही ले गया था। पास एक पैसा भी न था। कोटा से पैदल आगरा आए। किसी प्रकार अपने घर पहुँचे। बहुत बीमार थे। पिता ने यह समझकर कि घरवालों पर आपत्ति न आए, पुलिस को सूचना देनी चाही। पंडितजी ने पिता से बड़ी विनय-प्रार्थना की और दो-तीन दिन में घर छोड़ दिया। हम लोगों की बहुत खोज की। किसी का कुछ पता न पा दिल्ली में एक प्याऊ पर पानी पिलाने की नौकरी कर ली। अवस्था दिनों-दिन

बिगड़ रही थी। रोग भीषण रूप धारण कर रहा था। छोटे भाई तथा पत्नी को बुलाया। भाई किंकर्त्तव्यविमूढ़। वह क्या कर सकता था ? सरकारी अस्पताल में भर्ती कराने ले गया। पंडितजी की धर्मपत्नी को दूसरे स्थान में भेजकर जब वह अस्पताल आया, तो जो देखा उसे लिखते हुए लेखनी काँपने लगती है। पंडितजी शरीर त्याग चुके थे। केवल उनका मृत शरीरमात्र ही पड़ा हुआ था। स्वदेश की कार्य सिद्धि में पं. गेंदालालजी दीक्षित ने जिस निःसहाय अवस्था में अंतिम बलिदान दिया, उसकी स्वप्न में भी आशंका न थी। पंडितजी की प्रबल इच्छा थी कि उनकी मृत्यु गोली लगकर हो। भारतवर्ष की एक महान आत्मा विलीन हो गई और देश में किसी ने जाना भी नहीं। आपकी विस्तृत जीवनी "प्रभा" मासिक पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी है। मैनपुरी षड्यंत्र के मुख्य नेता आप ही समझे गए थे। इस षड्यंत्र में खास बात यह हुई कि नेताओं में से केवल दो व्यक्ति पुलिस के हाथ आए, जिनमें गेंदालाल दीक्षित एक सरकारी गवाह को लेकर भाग गए, श्री शिवकृष्ण जेल से भाग गए, फिर हाथ न आए। छः मास के बाद जिन्हें सजा हुई वे भी राजकीय घोषणा से मुक्त कर दिए गए। खुफिया पुलिस विभाग का क्रोध पूर्णतया शांत न हो सका और उनकी बदनामी भी इस केस में बहुत हुई।

तृतीय खण्ड

स्वतंत्र जीवन

राजकीय घोषणा के पश्चात् जब मैं शाहजहाँपुर आया तो शहर की अद्भुत दशा देखी। कोई पास तक खड़े होने का साहस न करता था। जिसके पास मैं जाकर खड़ा हो जाता था, वह नमस्ते कर चल देता था। पुलिस का बड़ा प्रकोप था। प्रत्येक समय वह छाया की भाँति पीछे-पीछे फिरा करती थी। इस प्रकार का जीवन कब तक व्यतीत किया जाए ? मैंने कपड़ा बुनने का काम सीखना आरंभ किया। जुलाहे बड़ा कष्ट देते थे। कोई काम सिखाना नहीं चाहता था। बड़ी कठिनता से मैंने कुछ काम सीखा। उसी समय एक कारखाने में मैनेजरी का स्थान खाली हुआ। मैंने उस स्थान के लिए प्रयत्न किया। मुझसे पाँच सौ रुपये की जमानत माँगी गई। मेरी दशा बड़ी शोचनीय थी। तीन-तीन दिवस तक भोजन प्राप्त नहीं होता था, क्योंकि मैंने प्रतिज्ञा की थी कि किसी से कुछ सहायता न लूँगा। पिताजी से बिना कुछ कहे मैं चला आया था। मैं पाँच सौ रुपये कहाँ से लाता ? मैंने दो-एक मित्रों से केवल दो सौ रुपये की जमानत देने की प्रार्थना की। उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। मेरे हृदय पर वज्रपात हुआ। संसार अंधकारमय दिखाई देता था। पर बाद में एक मित्र की कृपा से नौकरी मिल गई। अब अवस्था कुछ सुधरी। मैं भी सभ्य पुरुषों की भाँति समय व्यतीत करने लगा। मेरे पास भी चार पैसे हो गए। वे ही मित्र, जिनसे मैंने दो सौ रुपये की जमानत देने की प्रार्थना की थी, अब मेरे पास चार-चार हजार रुपयों की थैली, अपनी बंदूक,

लाइसेंस इत्यादि सब डाल जाते थे कि मेरे यहाँ उनकी वस्तुएँ सुरक्षित रहेंगी। समय के इस फेर को देखकर मुझे हँसी आती थी।

इस प्रकार कुछ समय बीता। दो-चार ऐसे पुरुषों से भेंट हुई, जिनको पहले मैं बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। उन लोगों ने मेरी पलायनावस्था के संबंध में कुछ समाचार सुने थे। मुझसे मिलकर वे बड़े प्रसन्न हुए। मेरी लिखी हुई पुस्तकें भी देखीं। इस समय मैं तीसरी पुस्तक "कैथेराइन" लिख चुका था। मुझे पुस्तकों के व्यवसाय में बहुत घाटा हो चुका था। मैंने माला का प्रकाशन स्थगित कर दिया। "कैथेराइन" एक पुस्तक-प्रकाशक को दे दी। उन्होंने बड़ी कृपा कर उस पुस्तक को थोड़े से हेर-फेर के साथ प्रकाशित कर दिया। "कैथेराइन" को देखकर मेरे इष्ट मित्रों को बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने मुझे पुस्तक लिखते रहने के लिए बड़ा उत्साहित किया। मैंने "स्वदेशी रंग" नामक एक और पुस्तक लिखकर एक पुस्तक-प्रकाशक को दी। वह भी प्रकाशित हो गई।

बड़े परिश्रम के साथ मैंने एक पुस्तक "क्रांतिकारी जीवन" लिखी। "क्रांतिकारी जीवन" को कई पुस्तक-प्रकाशकों ने देखा, पर किसी का साहस न हो सका कि उसको प्रकाशित करे। आगरा, कानपुर, कलकत्ता आदि कई स्थानों में घूमकर पुस्तक मेरे पास लौट आई। कई मासिक पत्रिकाओं में "राम" तथा "अज्ञात" नाम से मेरे लेख प्रकाशित हुआ करते थे। लोग बड़े चाव से उन लेखों का पाठ करते थे। मैंने किसी स्थान पर लेखन शैली का नियमपूर्वक अध्ययन न किया था। बैठे-बैठे खाली समय में ही कुछ लिखा करता और प्रकाशनार्थ भेज दिया करता था। अधिकतर बंगला तथा अंग्रेजी की पुस्तकों से अनुवाद करने का ही विचार था। थोड़े समय के पश्चात् श्री अरविन्द घोष की बंगला पुस्तक "योगिक साधन" का अनुवाद किया। दो-एक पुस्तक-प्रकाशकों को दिखाया पर वे बहुत कम धन देकर पुस्तक लेना चाहते थे। आजकल के समय में हिन्दी के लेखकों तथा अनुवादकों की अधिकता के कारण पुस्तक-प्रकाशकों को भी बड़ा अभिमान हो गया है। बड़ी कठिनाई से बनारस के एक प्रकाशक ने "योगिक साधन"

प्रकाशित करने का वचन दिया। पर थोड़े दिनों में वह स्वयं ही अपने साहित्य मंदिर में ताला डालकर कहीं पधार गए। पुस्तक का अब तक कोई पता न लगा। पुस्तक अति उत्तम थी। प्रकाशित हो जाने से हिन्दी साहित्य-सेवियों को अच्छा लाभ होता। मेरे पास जो "बोलशेविक क़रतूत" तथा "मन की लहर" की प्रतियाँ बची थीं, वे मैंने लागत से भी कम मूल्य पर कलकत्ता के एक व्यक्ति श्री दीनानाथ सगतिया को दे दीं। वहुत थोड़ी पुस्तकें मैंने बेची थीं। दीनानाथ महाशय पुस्तकें हड़प कर गए। मैंने नोटिस दिया। नालिश की। लगभग चार सौ रुपये की डिग्री भी हुई, किन्तु दीनानाथ महाशय का कहीं पता न चला। वह कलकत्ता छोड़कर पटना गए। पटना भी कई गरीबों का रुपया मारकर कहीं छिप गए। अनुभव-हीनता से इस प्रकार ठोकरें खानी पड़ीं। कोई पथ-प्रदर्शक तथा सहायक नहीं था, जिससे परामर्श करता। व्यर्थ के उद्योग धंधों तथा स्वतंत्र कार्यों में शक्ति का व्यय करता रहा।

पुनर्संगठन

जिन महानुभावों को मैं पूजनीय दृष्टि से देखता था, उन्हीं ने अपनी इच्छा प्रकट की कि मैं क्रांतिकारी दल का पुनः संगठन करूँ। गत जीवन के अनुभव से मेरा हृदय अत्यंत दुखी था। मेरा साहस न देखकर इन लोगों ने बहुत उत्साहित किया और कहा कि हम आपको केवल निरीक्षण का कार्य देंगे, बाकी सब कार्य स्वयं करेंगे। कुछ मनुष्य हमने पहले जुटा लिए हैं, धन की कमी न होगी, आदि। मान्य पुरुषों की प्रवृत्ति देखकर मैंने भी स्वीकृति दे दी। मेरे पास जो अस्त्र-शस्त्र थे, मैंने दिए। जो दल उन्होंने एकत्रित किया था, उसके नेता से मुझे मिलाया। उसकी वीरता की बड़ी प्रशंसा की। वह एक अशिक्षित ग्रामीण पुरुष था। मेरी समझ में आ गया कि यह बदमाशों का या स्वार्थी जनों का कोई संगठन है। मुझसे उस दल के नेता ने दल का कार्य निरीक्षण करने की प्रार्थना की। दल में कई फौज तथा लड़ाई पर से वापस किए गए व्यक्ति थे। मुझे इस प्रकार के

व्यक्तियों से कभी कोई काम न पड़ा था। मैं दो-एक महानुभावों को साथ ले इन लोगों का कार्य देखंने के लिए गया।

थोड़े दिनों बाद इस दल के नेता महाशय एक वैश्या को भी ले आए। उसे रिवाल्वर दिखाया कि यदि कहीं गई तो गोली से मार दी जाएगी। यह समाचार सुन उसी दल के दूसरे सदस्य बहुत नाराज़ हुए। और मेरे पास खबर भेजने का प्रबंध किया। उसी समय एक दूसरा आदमी पकड़ा गया, जो नेता महाशय को जानता था। नेता महाशय रिवाल्वर तथा कुछ सोने के आभूषणों-सहित गिरफ्तार हो गए। उनकी वीरता की बड़ी प्रशंसा सुनी थी, जो इस प्रकार प्रकट हुई कि कई आदमियों के नाम पुलिस को बताए और इक़बाल कर लिया। लगभग तीस-चालीस आदमी पकड़े गए।

एक दूसरा व्यक्ति जो बहुत वीर था। पुलिस उसके पीछे पड़ी थी। एक दिन पुलिस कप्तान ने सवार तथा तीस-चालीस बंदूक वाले सिपाही लेकर उसके घर में उसे घेर लिया। उसने छत पर चढ़कर दो-नाली बंदूक से लगभग तीन सौ फ़ायर किए। बंदूक गरम होकर गल गई। पुलिस वाले समझे कि घर में कई आदमी हैं। सब पुलिस वाले छिपकर आड़ में से सुबह की प्रतीक्षा करने लगे। उसने मौका पाया। मकान के पीछे से कूद पड़ा, एक सिपाही ने उसे देख लिया। उसने सिपाही की नाक पर रिवाल्वर का कुंदा मारा। सिपाही चिल्लाया। सिपाही के चिल्लाते ही मकान में से एक फ़ायर हुआ। पुलिस वालों ने समझा मकान ही में है। सिपाही को धोखा हुआ होगा। बस, वह जंगल में निकल गया। जंगल में जाकर एक दूसरे दल से मिला। जंगल में भी एक समय पुलिस कप्तान से सामना हो गया। गोली चली। उसके भी पैर में छर्रे लगे थे। अब यह बड़े साहसी हो गए थे। समझ गए थे कि पुलिसवाले किस प्रकार समय पर आड़ में छिप जाते हैं। इन लोगों का दल छिन्न-भिन्न हो गया था। अतः उन्होंने मेरे पास आश्रय लेना चाहा। मैंने बड़ी कठिनाई से अपना पीछा छुड़वाया। तत्पश्चात् जंगल में जाकर ये दूसरे दल से मिल गए। वहाँ पर दुराचार के कारण जंगल के दल के

नेता ने उन्हें गोली से मार दिया। उस नेता को भी समय पाकर उसके साथी ने गोली से मार दिया। इस प्रकार सब दल छिन्न-भिन्न हो गया। जो पकड़े गए उन पर कई डकैतियों के मुकदमे चले। किसी को तीस साल, किसी को पचास साल, किसी को बीस साल की सज़ाएँ हुईं। एक बेचारा, जिसका किसी डकैती से कोई संबंध न था, केवल शत्रुता के कारण फँसा दिया गया। उसे फाँसी हो गई और जो सब प्रकार डकैतियों में सम्मिलित था, जिसके पास डकैती का माल तथा कुछ हथियार पाए गए, पुलिस से गोली भी चली, उसे पहले फाँसी की सज़ा की आज्ञा हुई, पर पैरवी अच्छी हुई, अतएव हाईकोर्ट से फाँसी की सज़ा माफ़ हो गई, केवल पाँच वर्ष की सजा रह गई। जेल वालों से मिलकर उसने डकैतियों में शिनाख्त न होने दी थी। इस प्रकार इस दल की समाप्ति हुई। भगवान की कृपा से हमारे अस्त्र बच गए। केवल एक ही रिवाल्वर पकड़ा गया।

नोट बनाना

इसी बीच मेरे एक मित्र की एक नोट बनाने वाले महाशय से भेंट हुई। उन्होंने बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँधीं। बड़ी लंबी-लंबी स्कीम बाँधने के पश्चात् मुझसे कहा कि एक नोट बनाने वाले से भेंट हुई है। बड़ा दक्ष पुरुष है। मुझे भी बना हुआ नोट देखने की बड़ी तीव्र इच्छा थी। मैंने उन सज्जन के दर्शन की इच्छा प्रकट की। जब उक्त नोट बनाने वाले महाशय मुझे मिले तो बड़ी-बड़ी बातें कीं। मैंने कहा कि मैं स्थान तथा आर्थिक सहायता दूँगा, नोट बनाओ। जिस प्रकार उन्होंने मुझसे कहा, मैंने सब प्रबंध कर दिया, किंतु मैंने कह दिया था कि नोट बनाते समय मैं वहाँ उपस्थित रहूँगा, मुझे बताना कुछ मत, पर मैं नोट बनाने की रीति अवश्य देखना चाहता हूँ। पहले-पहल उन्होंने दस रुपये का नोट बनाने का निश्चय किया। मुझसे एक दस रुपये का नया साफ नोट मँगाया। नौ रुपये दवा खरीदने के बहाने से ले गए। रात्रि में नोट बनाने का प्रबंध हुआ। दो शीशे लाए। कुछ कागज भी लाए। दो-तीन शीशियों में कुछ दवाई थी। दवाइयों को

मिलाकर एक प्लेट में सादे कागज पानी में भिगोए। मैं जो साफ़ नोट लाया था, उस पर एक सादा कागज लगाकर दोनों को दूसरी दवा डालकर धोया। फिर दो सादे कागजों में लपेट एक पुड़िया-सी बनाई और अपने एक साथी को दी कि उसे आग पर गरम कर लाए। आग वहाँ से कुछ दूर पर जलती थी। कुछ समय तक वह आग पर गरम करता रहा और पुड़िया लाकर वापस दे दी। नोट बनाने वाले ने पुड़िया खोलकर दोनों शीशों में दबाकर शीशों को दवा में धोया और फीते से शीशों को बाँधकर रख दिया और कहा कि दो घंटे में नोट बन जाएगा। शीशे रख दिए। बातचीत होने लगी। कहने लगा, "इस प्रयोग में बड़ा व्यय होता है। छोटे-छोटे नोट बनाने से कोई लाभ नहीं। बड़े नोट बनाने चाहिए, जिससे पर्याप्त धन की प्राप्ति हो।" इस प्रकार मुझे भी सिखा देने का वचन दिया। मुझे कुछ कार्य था। मैं जाने लगा तो वह भी चला गया। दो घंटे के बाद आने का निश्चय हुआ।

मैं विचारने लगा कि किस प्रकार एक नोट के ऊपर दूसरा सादा कागज रखने से नोट बन जाएगा। मैंने प्रेस का काम सीखा था। थोड़ी बहुत फ़ोटोग्राफ़ी भी जानता था। साइंस (विज्ञान) का भी अध्ययन किया था। कुछ समझ में न आया कि नोट सीधा कैसे छपेगा। सबसे बड़ी बात यह थी कि नंबर कैसे छपेंगे। मुझे बड़ा भारी संदेह हुआ। दो घंटे बाद मैं जब गया तो रिवाल्वर भरकर जेब में डालकर ले गया। यथासमय वह महाशय आए। उन्होंने शीशे खोलकर कागज निकालकर उन्हें फिर एक दवा से धोया। अब दोनों कागज खोले। एक मेरा लाया हुआ नोट और दूसरा एक दस रुपये का नोट उसी के ऊपर से उतारकर सुखाया। कहा– "कितना साफ़ नोट है।" मैंने हाथ में लेकर देखा। दोनों नोटों के नंबर मिलाए। नंबर नितांत भिन्न-भिन्न थे। मैंने जेब से रिवाल्वर निकाल नोट बनाने वाले महाशय की छाती पर रख, कहा, "बदमाश ! इस तरह ठगता फिरता है ?" वह काँपकर गिर पड़ा ! मैंने उसको उसकी मूर्खता समझाई कि यह ढोंग गाँववासियों के सामने चल सकता है, अनजान पढ़े-लिखे भी धोखे में आ सकते हैं। किन्तु तू मुझे धोखा देने आया है। अंत में मैंने उससे प्रतिज्ञा-पत्र लिखाकर,

उस पर उसके हाथों की दसों अंगुलियों के निशान लगवाए कि वह ऐसा काम फिर नहीं करेगा। दसों अंगुलियों के निशान देने में उसने कुछ ढील की। मैंने रिवाल्वर उठाकर कहा कि गोली चलती है, उसने तुरंत दसों अंगुलियों के निशान बना दिए। बुरी तरह काँप रहा था। मेरे उन्नीस रुपये खर्च हो चुके थे। मैंने दोनों नोट रख लिए और शीशे, दवाएँ आदि सब छीन लिए कि मित्रों को तमाशा दिखाऊँगा। तत्पश्चात् उन महाशय को विदा किया। उसने किया यह था कि जब अपने साथी को आग पर गरम करने के लिए कागज की पुड़िया दी थी, उसी समय वह साथी सादे कागज की पुड़िया बदलकर दूसरी पुड़िया ले आया जिसमें दोनों नोट थे। इस प्रकार नोट बन गया।

इस प्रकार का एक बड़ा भारी दल है, जो सारे भारत में ठगी का काम करके हज़ारों रुपये पैदा करता है। मैं एक सज्जन को जानता हूँ जिन्होंने इसी प्रकार पचास हज़ार से अधिक रुपये पैदा किए हैं। होता यह है कि ये लोग अपने एजेंट रखते हैं। वे एजेंट साधारण पुरुषों के पास जाकर नोट बनाने की कथा कहते हैं। आता धन किसे बुरा लगता है? वे नोट बनवाते हैं। इस प्रकार पहले दस का नोट बनाकर दिया, वे बाज़ार में बेच आए। सौ रुपये का बनाकर दिया वह भी बाज़ार में चलाया, और चल क्यों न जाए? इस प्रकार के सब नोट असली होते हैं। वे तो केवल चाल से रख दिए जाते हैं। इसके बाद कहा कि हज़ार या पाँच सौ का नोट लाओ तो कुछ धन भी मिले। जैसे-तैसे करके बेचारा एक हज़ार का नोट लाया। सादा कागज रखकर शीशे में बाँध दिया। हज़ार का नोट जेब में रखा और चंपत हुए। नोट के मालिक रास्ता देखते हैं, वहाँ नोट बनाने वालों का पता ही नहीं। अंत में विवश हो शीशों को खोला जाता है, तो दो सादे कागजों के अलावा कुछ नहीं मिलता। वे अपने सिर पर हाथ मारकर रह जाते हैं। इस डर से कि यदि पुलिस को मालूम हो गया तो और लेने के देने पड़ेंगे, किसी से कुछ कह भी नहीं सकते। कलेजा मसोसकर रह जाते हैं। पुलिस ने इस प्रकार के कुछ अभियुक्तों को

गिरफ्तार भी किया, किंतु ये लोग पुलिस को नियमपूर्वक चौथ देते रहते हैं और इस कारण बचे रहते हैं।

चालबाजी

कई महानुभावों ने गुप्त समिति के नियम आदि बनाकर मुझे दिखाए। उनमें एक नियम यह भी था कि जो व्यक्ति समिति का कार्य करें, उन्हें समिति की ओर से कुछ मासिक दिया जाए। मैंने इस नियम को अनिवार्य रूप में मानना अस्वीकार किया। मैं यहाँ तक सहमत था कि जो व्यक्ति समिति के कार्य में अपना सारा समय व्यतीत करें, उनको केवल गुजारा-मात्र समिति की ओर से दिया जा सकता है। जो लोग कोई व्यवस्था करते हैं, उन्हें किसी प्रकार का मासिक भत्ता देना उचित न होगा। जिन्हें समिति के कोष में से कुछ दिया जाए, उनको भी कुछ व्यवसाय करने का प्रबंध करना उचित है, ताकि ये लोग पूर्णतः समिति की सहायता पर निर्भर रहकर निरे भाड़े के टट्टू न बन जाएँ। भाड़े के टट्टुओं से समिति का कार्य लेना, जिसमें कतिपय मनुष्यों के प्राणों का उत्तरदायित्व हो और थोड़ा-सा भेद खुलने से ही बड़ा भयंकर परिणाम हो सकता है, उचित नहीं है। तत्पश्चात् उन महानुभावों की राय हुई कि एक निश्चित कोष समिति के सदस्यों को देने के लिए स्थापित किया जाए, जिसकी आय का ब्यौरा इस प्रकार हो कि डकैतियों से जितना धन प्राप्त हो उसका आधा समिति के कार्यों में व्यय किया जाए और आधा समिति के सदस्यों को बराबर-बराबर बाँट दिया जाए। इस प्रकार परामर्श से मैं सहमत न हो सका और मैंने इस प्रकार की गुप्त समिति में, जिसका एक उद्देश्य पेट-पूर्ति हो, योग देने से इन्कार कर दिया। जब मेरी इस प्रकार की दृष्टि देखी तो उन महानुभावों ने आपस में षड्यंत्र रचा।

जब मैंने उन महानुभावों की राय और उनके नियमों को स्वीकार न किया तो वे चुप हो गए। मैं भी कुछ समझ न सका कि जो लोग मुझमें इतनी श्रद्धा रखते थे, जिन्होंने कई प्रकार की आशाएँ देखकर मुझसे क्रांतिकारी दल का

पुनर्संगठन करने की प्रार्थनाएँ की थीं, अनेक प्रकार की उम्मीदें बँधाई थीं, सब कार्य स्वयं करने के वचन दिए थे, वे लोग ही मुझसे इस प्रकार के नियम बनाने की माँग करने लगे। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। प्रथम प्रयत्न में, जिस समय मैं मैनपुरी षड्यंत्र के सदस्यों सहित कार्य करता था, उस समय हममें से कोई भी अपने व्यक्तिगत (प्राइवेट) खर्च में समिति का धन व्यय करना पूर्ण पाप समझता था। जहाँ तक हो सकता अपने खर्च के लिए माता-पिता से कुछ लाकर प्रत्येक सदस्य समिति के कार्यों में धन व्यय किया करता था। इस कारण मेरा साहस इस प्रकार के नियमों में सहमत होने का न हो सका। मैंने विचार किया कि यदि कोई समय आया और किसी प्रकार अधिक धन प्राप्त हुआ, तो कुछ सदस्य ऐसे स्वार्थी हो सकते हैं, जो अधिक धन लेने की इच्छा करें, और आपस में शत्रुता बढ़े। उसके परिणाम बड़े भयंकर हो सकते हैं। अतः इस प्रकार के कार्य में योग देना मैंने उचित न समझा।

मेरी यह अवस्था देख इन लोगों ने आपस में षड्यंत्र रचा, कि जिस प्रकार मैं कहूँ वे नियम स्वीकार कर लें और विश्वास दिलाकर जितने अस्त्र-शस्त्र मेरे पास हों, उनको मुझसे लेकर सब पर अपना कब्ज़ा जमा लें। यदि अस्त्र-शस्त्र माँगूँ तो मुझसे युद्ध किया जाए, और आवश्यकता पड़े तो मुझे कहीं लेजाकर जान से मार दिया जाए। तीन सज्जनों ने इस प्रकार का षड्यंत्र रचा और मुझसे चालबाज़ी करनी चाही। भगवान की कृपा से उनमें से एक सदस्य के मन में कुछ दया आ गई। उसने आकर मुझसे सब भेद कह दिया। मुझे सुनकर बड़ा खेद हुआ कि जिन व्यक्तियों को मैं पिता तुल्य मानकर श्रद्धा करता हूँ, वे ही मेरे नाश करने के लिए इस प्रकार नीचता का कार्य करने को तैयार हैं। मैं सँभल गया। मैं उन लोगों से सतर्क रहने लगा कि पुनः प्रयाग जैसी घटना न घटे। जिन महाशय ने मुझसे भेद कहा था, उनकी उत्कट इच्छा थी कि वह एक रिवाल्वर रखें और इस इच्छा-पूर्ति के लिए उन्होंने मेरा विश्वासपात्र बनने के कारण मुझसे भेद कहा था। मुझसे एक रिवाल्वर माँगा कि मैं उन्हें कुछ समय के लिए रिवाल्वर दे दूँ। यदि मैं उन्हें रिवाल्वर दे देता तो उसे वह हजम कर जाते। मैं कर ही

क्या सकता था ? और अब रिवाल्वर आदि पाना कोई सरल कार्य भी न था। बाद को बड़ी कठिनाई से इन चालबाजियों से अपना पीछा छुड़ाया।

अब सब ओर से चित्त को हटाकर बड़े मनोयोग से नौकरी में समय व्यतीत करने लगा। कुछ रुपया इकट्ठा करने के विचार से, कुछ कमीशन आदि का प्रबंध कर लेता था। इस प्रकार पिताजी का थोड़ा-सा भार बँटाया। सबसे छोटी बहन का विवाह नहीं हुआ था। पिताजी की शक्ति के बाहर था कि उस बहन का विवाह किसी भले घर में कर सकते। मैंने रुपया जमा करके बहन का विवाह एक अच्छे जमींदार के यहाँ कर दिया। पिताजी का भार उतर गया। अब केवल माता, पिता, दादी तथा छोटे भाई थे, जिनके भोजन का प्रबंध होना अधिक कठिन काम नहीं था। अब माताजी की उत्कट इच्छा हुई कि मैं भी विवाह कर लूँ। कई अच्छे-अच्छे विवाह-संबंध के सुयोग एकत्रित हुए। किंतु मेरा विचार था कि जब तक पर्याप्त धन पास न हो, विवाह-बंधन में फँसना ठीक नहीं। मैंने स्वतंत्र कार्य आरंभ किया, नौकरी छोड़ दी। एक मित्र ने मेरी सहायता की। मैंने रेशमी कपड़ा बनाने का एक निजी कारखाना खोल लिया। बड़े मनोयोग तथा परिश्रम से काम किया। परमात्मा की दया से अच्छी सफलता हुई। एक-डेढ़ साल में ही मेरा कारखाना चमक गया। तीन-चार हजार की पूँजी से कार्य आरंभ किया था। एक साल बाद सब खर्च निकाल कर लगभग दो हजार रुपये का लाभ हुआ। मेरा उत्साह और भी बढ़ा। मैंने एक-दो व्यवसाय और भी आरंभ किए। उसी समय मालूम हुआ कि संयुक्त-प्रांत के क्रांतिकारी दल का पुनर्संगठन हो रहा है। कार्यारंभ हो गया है। मैंने भी योग देने का वचन दिया, किंतु उस समय मैं अपने व्यवसाय में बुरी तरह फँसा हुआ था। मैंने छः मास का समय लिया कि छः मास में मैं अपने व्यवसाय को अपने साझी को सौंप दूँगा, और अपने आपको उसमें से निकाल लूँगा, तब स्वतंत्रतापूर्वक क्रांतिकारी कार्य में योग दे सकूँगा। छः मास तक मैंने अपने कारखाने का सब काम साफ करके अपने साथी को सब काम समझा दिया, उसके बाद अपने वचनानुसार कार्य में मदद देने का प्रयास किया।

चतुर्थ खण्ड

वृहत् संगठन

यद्यपि मैं अपना निश्चय कर चुका था कि अब इस प्रकार के कार्यों में कोई भाग न लूँगा, तथापि मुझे पुनः क्रांतिकारी आंदोलन में हाथ डालना पड़ा। जिसका कारण यह था कि मेरी इच्छा समाप्त नहीं हुई थी, मेरे दिल के अरमान न निकले थे। असहयोग आंदोलन शिथिल हो चुका था। पूर्ण आशा थी कि जितने देश के नवयुवक उस आंदोलन में भाग लेते थे, उसमें अधिकतर क्रांतिकारी आंदोलन में सहायता देंगे और पूरी लगन से काम करेंगे। जब कार्य आरंभ हो गया और असहयोगियों को टटोला तो वे आंदोलन से कहीं अधिक शिथिल हो चुके थे। उनकी आशाओं पर पानी फिर चुका था। निज की पूँजी समाप्त हो चुकी थी। घर में व्रत हो रहे थे। आगे की भी कोई विशेष आशा न थी। कांग्रेस में भी स्वराज्य दल का जोर हो गया था। जिनके पास कुछ धन तथा इष्ट मित्रों का संगठन था, वे कौंसिलों तथा असेंबली के सदस्य बन गए। ऐसी अवस्था में यदि क्रांतिकारी संगठनकर्ताओं के पास पर्याप्त धन होता तो वे असहयोगियों को हाथ में लेकर उनसे काम ले सकते थे। जितना भी सच्चा काम करने वाला हो, किंतु पेट तो सबके हैं। दिनभर में थोड़ा-सा अन्न क्षुधा-निवृत्ति के लिए मिलना परमावश्यक है। फिर शरीर ढकने की भी आवश्यकता होती है। अतएव कुछ प्रबंध ही ऐसा होना चाहिए, जिसमें दैनिक आवश्यकताएँ पूरी हो जाएँ। जितने धनी-मानी स्वदेश-प्रेमी थे उन्होंने असहयोग आंदोलन में पूर्ण

सहायता दी थी। फिर भी कुछ ऐसे कृपालु सज्जन थे, जो थोड़ी-बहुत आर्थिक सहायता देते थे। किन्तु प्रांत-भर के प्रत्येक जिले में संगठन करने का विचार था। पुलिस की दृष्टि बचाने के लिए भी पूर्ण प्रयत्न करना पड़ता था। ऐसी परिस्थिति में साधारण नियमों को काम में लाते हुए कार्य करना बड़ा कठिन था। अनेक कोशिशों के पश्चात् कुछ भी सफलता न होती थी। दो-चार जिलों में संगठनकर्ता नियुक्त किए गए थे, जिनको कुछ मासिक गुजारा दिया जाता था। पाँच-दस महीने तक तो इस प्रकार कार्य चलता रहा। बाद में जो सहायक कुछ आर्थिक सहायता देते थे, उन्होंने भी हाथ खींच लिया। अब हम लोगों की अवस्था बहुत खराब हो गई। सब कार्यभार मेरे ही ऊपर आ चुका था। कोई भी किसी प्रकार की मदद न देता था। जहाँ-तहाँ से पृथक-पृथक ज़िलों में कार्य करने वाले मासिक व्यय की माँग कर रहे थे। कई मेरे पास आए भी। मैंने कुछ रुपया कर्ज लेकर उन लोगों को एक मास का खर्च दिया। कइयों पर कुछ कर्ज भी हो चुका था। मैं कर्ज न निपटा सका। एक केन्द्र के कार्यकर्ता को जब पर्याप्त धन न मिल सका, तो वह कार्य छोड़कर चले गए। मेरे पास क्या प्रबंध था, जो मैं उसकी उदर-पूर्ति कर सकता ? अद्भुत समस्या थी। किसी तरह उन लोगों को समझाया।

थोड़े दिनों में क्रांतिकारी पर्चे आए। सारे देश में निश्चित तिथि पर पर्चे बाँटे गए। रंगून, बंबई, लाहौर, अमृतसर, कलकत्ता तथा बंगाल के मुख्य शहरों तथा संयुक्त प्रांत के सभी मुख्य-मुख्य जिलों में पर्याप्त संख्या में पर्चों का वितरण हुआ। भारत सरकार बड़ी सशंक हुई कि ऐसी कौन-सी और इतनी बड़ी सुसंगठित समिति है, जो एक ही दिन में सारे भारत में पर्चे बँट गए। उसी के बाद मैंने कार्यकारिणी की एक बैठक करके जो केन्द्र खाली हो गया था, उसके लिए एक महाशय को नियुक्त किया। केन्द्र में कुछ परिवर्तन भी हुआ, क्योंकि सरकार के पास संयुक्त प्रांत के संबंध में बहुत-सी सूचनाएँ पहुँच चुकी थीं। भविष्य की कार्य-प्रणाली का निर्णय किया गया।

कार्यकर्त्ताओं की दुर्दशा

इस समय समिति के सदस्यों की बड़ी दुर्दशा थी। चने मिलना भी कठिन था। सब पर कुछ-न-कुछ कर्ज हो गया था। किसी के पास साबुत कपड़े तक न थे। कुछ विद्यार्थी बनकर धार्मिक स्थानों तक में भोजन कर आते थे। चार-पाँच ने अपने-अपने केन्द्र त्याग दिए। पाँच सौ से अधिक रुपये मैं कर्ज़ लेकर व्यय कर चुका था। यह दुर्दशा देख मुझे बड़ा कष्ट होने लगा। मुझसे भी भर पेट भोजन न किया जाता था। सहायता के लिए कुछ सहानुभूति रखने वालों का द्वार खटखटाया किंतु कोरा उत्तर मिला। किंकर्त्तव्यविमूढ़ था (समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूँ)। कुछ समझ में न आता था। कोमल-हृदय नवयुवक मेरे चारों ओर बैठकर कहा करते, "पंडितजी, अब क्या करें ?" मैं उनके सूखे-सूखे मुख देख अक्सर रो पड़ता कि स्वदेश-सेवा का व्रत लेने के कारण फकीरों से भी बुरी दशा हो रही है। एक-एक कुर्ता तथा धोती भी ऐसी नहीं थी जो साबुत होती। लंगोट बाँधकर दिन व्यतीत करते थे। अंगोछे पहनकर नहाते थे, एक समय क्षेत्र में भोजन करते थे, एक समय दो-दो पैसे के सत्तू खाते थे। मैं पंद्रह वर्ष से एक समय दूध पीता था। इन लोगों की यह दशा देखकर मुझे दूध पीने का साहस न होता था। मैं सबके साथ बैठकर सत्तू खा लेता था। मैंने विचार किया कि इतने नवयुवकों के जीवन को नष्ट करके उन्हें कहाँ भेजा जाए ? जब समिति का सदस्य बनाया था, तो लोगों ने बड़ी-बड़ी आशाएँ बँधाई थीं। कइयों का पढ़ना-लिखना छुड़ाकर काम में लगा दिया था। पहले से मुझे यह हालत मालूम होती तो मैं कदापि इस प्रकार की समिति में योग न देता। बुरा फँसा। क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता था। अंत में धैर्य धारण कर दृढ़तापूर्वक कार्य करने का निश्चय किया।

इसी बीच में बंगाल आर्डिनेंस निकला और गिरफ्तारियाँ हुईं। इनकी गिरफ्तारियों ने यहाँ तक असर डाला कि कार्यकर्त्ताओं में निष्क्रियता के भाव आ गए। क्या प्रबंध किया जाए, कुछ निर्णय नहीं कर सके। मैंने प्रयत्न किया कि किसी तरह

एक सौ रुपये मासिक का कहीं से प्रबंध हो जाए। प्रत्येक केन्द्र के प्रतिनिधि से हर प्रकार से प्रार्थना की थी कि समिति के सदस्यों से कुछ सहायता लें, मासिक चंदा वसूल करें, पर किसी ने कुछ न सुनी। कुछ सज्जनों से व्यक्तिगत प्रार्थना की कि वे अपने वेतन में से कुछ मासिक दे दिया करें। किसी ने कुछ ध्यान न दिया। सदस्य रोज मेरे द्वार पर खड़े रहते थे। पत्रों की भरमार थी कि कुछ धन का प्रबंध कीजिए, भूखों मर रहे हैं। दो-एक को व्यवसाय में लगाने का भी इंतजाम किया। दो-चार जिलों में काम बंद कर दिया, वहाँ के कार्यकर्त्ताओं से स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि हम मासिक शुल्क नहीं दे सकते। यदि निर्वाह का कोई दूसरा मार्ग हो, और उस पर ही निर्भर रहकर कार्य कर सकते हो तो करो। हमसे जिस समय हो सकेगा देंगे, किन्तु मासिक वेतन देने के लिए हम बाध्य नहीं। कोई बीस रुपये कर्ज के माँगता था, कोई पचास का बिल भेजता था, और कइयों ने असंतुष्ट होकर कार्य छोड़ दिया। मैंने भी समझ लिया– ठीक ही है, पर इतना करने पर भी गुजर न हो सकी।

अशांत युवक-दल

कुछ महानुभावों की प्रकृति होती है कि अपनी कुछ शान जमाना या अपने आपको बड़ा दिखाना वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं, जिससे भयंकर हानियाँ हो जाती हैं। भोले-भाले आदमी ऐसे मनुष्यों में विश्वास करके उनमें आशातीत साहस, योग्यता तथा कार्यकुशलता की आशा करके उन पर श्रद्धा रखते हैं। किंतु समय आने पर यह निराशा के रूप में परिणत हो जाती है। इस प्रकार के मनुष्यों की किन्हीं कारणों से यदि प्रतिष्ठा हो गई, अथवा अनुकूल परिस्थितियों के उपस्थित हो जाने से उन्होंने किसी उच्च कार्य में योग दे दिया, तब तो फिर वे अपने आपको बड़ा भारी कार्यकर्त्ता जाहिर करते हैं। जनसाधारण भी अंधविश्वास से उनकी बातों पर विश्वास कर लेते हैं, विशेषकर नवयुवक तो इस प्रकार के मनुष्यों के जाल में शीघ्र ही फँस जाते हैं। ऐसे ही लोग नेतागिरी की धुन में

अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकाया करते हैं। इसी कारण पृथक-पृथक दलों का निर्माण होता है। इस प्रकार के मनुष्य प्रत्येक समाज तथा प्रत्येक जाति में पाए जाते हैं। इनसे क्रांतिकारी दल भी मुक्त नहीं रह सकता। नवयुवकों का स्वभाव चंचल होता है, वे शांत रहकर संगठित कार्य करना बड़ा कठिन समझते हैं। उनके हृदय में उत्साह की उमंगें उठती हैं। वे समझते हैं दो-चार अस्त्र-शस्त्र हाथ आए कि हमने सरकार को नाकों चने चबवा दिए। मैं भी जब क्रांतिकारी दल में योग देने का विचार कर रहा था, उस समय मेरी प्रबल इच्छा थी कि यदि एक रिवाल्वर मिल जाए तो दस-बीस अंग्रेजों को मार दूँ। इसी प्रकार के भाव मैंने कई नवयुवकों में देखे। उनकी बड़ी प्रबल हार्दिक इच्छा होती है कि किसी प्रकार एक रिवाल्वर या पिस्तौल उनके हाथ लग जाए तो वे उसे अपने पास रख लें।

मैंने उनसे रिवाल्वर पास रखने का लाभ पूछा, तो कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दे सके। कई युवकों को मैंने इस शौक को पूरा करने में सैकड़ों रुपये बरबाद करते भी देखा है। किसी क्रांतिकारी आंदोलन के सदस्य नहीं, कोई विशेष कार्य भी नहीं, महज शौकिया रिवाल्वर पास रखेंगे। ऐसे ही थोड़े से युवकों का एक दल एक महोदय ने भी एकत्रित किया। ये सब बड़े सच्चरित्र, स्वाभिमानी और सच्चे कार्यकर्त्ता थे। इस दल ने विदेश से अस्त्र प्राप्त करने का बड़ा उत्तम सूत्र प्राप्त किया था, जिससे इच्छानुसार पर्याप्त अस्त्र मिल सकते थे। उन अस्त्रों के दाम भी अधिक न थे। अस्त्र भी पर्याप्त संख्या में बिल्कुल नए मिलते थे। यहाँ तक प्रबंध हो गया था कि यदि हम लोग रुपये का उचित प्रबंध कर देंगे, और समय से मूल्य निपटा दिया करेंगे, तो हमको माल उधार भी मिल जाया करेगा और हमें जब जिस प्रकार के जितनी संख्या में अस्त्रों की आवश्यकता होगी, मिल जाया करेंगे। यही नहीं समय आने पर हम विशेष प्रकार की मशीन वाली बंदूकें भी बनवा सकेंगे। इस समय समिति की आर्थिक अवस्था बड़ी खराब थी। इस सूत्र के हाथ लग जाने और इसके लाभ उठाने की इच्छा होने पर भी

बिना रुपये के कुछ होता दिखाई न पड़ता था। रुपये का प्रबंध करना नितांत आवश्यक था। किंतु वह हो कैसे ? दान कोई देता न था, कर्ज भी न मिलता था और कोई उपाय न देख डाका डालना तय हुआ। किंतु किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति पर डाका डालना हमें ठीक न लगता था। सोचा, यदि लूटना है तो सरकारी माल क्यों न लूटा जाए ? इसी उधेड़-बुन में एक दिन मैं रेल में जा रहा था। गार्ड के डिब्बे के पास की गाड़ी में बैठा था। स्टेशन मास्टर एक थैली लाया और गार्ड के डिब्बे में डाल गया। कुछ खटपट की आवाज़ हुई। मैंने उतर कर देखा कि एक लोहे का संदूक रखा है। विचार किया कि इसी में थैली डाली होगी। अगले स्टेशन पर उसमें थैली डालते भी देखा। अनुमान किया कि लोहे का संदूक गार्ड के डिब्बे में जंजीर से बँधा रहता होगा, ताला पड़ा रहता होगा, आवश्यकता होने पर ताला खोलकर उतार लेते होंगे। इसके थोड़े दिनों बाद लखनऊ स्टेशन पर जाने का अवसर प्राप्त हुआ। देखा एक गाड़ी में से कुली लोहे के आमदनी वाले संदूक उतार रहे हैं। निरीक्षण करने से मालूम हुआ कि उसमें जंजीर ताला कुछ नहीं पड़ता, यों ही रखे जाते हैं। उसी समय निश्चय किया कि इसी पर हाथ मारूँगा।

रेलवे डकैती (काकोरी)

उसी समय से धुन सवार हुई। तुरंत स्थान पर जा टाइम-टेबुल देखकर अनुमान किया कि सहारनपुर से गाड़ी चलती है, लखनऊ तक अवश्य दस हजार रुपये रोज की आमदनी होती होगी। सब बातें ठीक करके कार्यकर्त्ताओं का संग्रह किया। दस नवयुवकों को लेकर विचार किया कि किसी छोटे स्टेशन पर जब गाड़ी खड़ी हो, स्टेशन के तारघर पर अधिकार कर लें, और गाड़ी का संदूक उतारकर तोड़ डालें, जो कुछ मिले उसे लेकर चल दें, परंतु इस कार्य में मनुष्यों की अधिक संख्या की आवश्यकता थी। इस कारण यही निश्चय किया कि गाड़ी की जंजीर खींचकर चलती गाड़ी को खड़ा करके तब लूटा जाए। संभव है कि

मन्मथनाथ गुप्त

तीसरे दर्जे की जंजीर खींचने से गाड़ी खड़ी न हो, क्योंकि तीसरे दर्जे में अक्सर प्रबंध ठीक नहीं रहता है। इस कारण से दूसरे दर्जे की जंजीर खींचने का प्रबंध किया। सब लोग उसी ट्रेन में सवार थे। गाड़ी खड़ी होने पर सब उतरकर गार्ड के डिब्बे के पास पहुँच गए। लोहे का संदूक उतारकर छेनियों से काटना चाहा, छेनियों ने काम न किया, तब कुल्हाड़ा चला।

मुसाफिरों से कह दिया कि सब गाड़ी में चढ़ जाओ। गाड़ी का गार्ड गाड़ी में चढ़ना चाहता था, पर उसे जमीन पर लेट जाने की आज्ञा दी, ताकि बिना गार्ड के गाड़ी न जा सके। दो आदमियों को नियुक्त किया कि वे लाइन की पगडंडी को छोड़कर घास में खड़े होकर गाड़ी से हटे हुए गोली चलाते रहें। एक सज्जन गार्ड के डिब्बे से उतरे। उनके पास भी माउजर पिस्तौल था। विचारा कि ऐसा शुभ अवसर जाने कब हाथ आए। माउजर पिस्तौल काहे को चलाने को मिलेगा ? उमंग जो आई, सीधी करके दागने लगे। मैंने जो देखा तो डाँटा, क्योंकि गोली चलाने की उनकी ड्यूटी ही नहीं थी। फिर यदि कोई मुसाफिर कौतूहल-वश बाहर को सिर निकाले तो उसके गोली जरूर लग जाए। हुआ भी ऐसा ही, जो व्यक्ति रेल से उतरकर अपनी स्त्री के पास जा रहा था, मेरा ख्याल है कि उन्हीं महाशय की गोली उसको लग गई, क्योंकि जिस समय यह महाशय संदूक नीचे डालकर गार्ड के डिब्बे से उतरे थे, केवल दो-तीन फायर हुए थे। उसी समय स्त्री ने कोलाहल किया होगा और

भूपेन्द्रनाथ सान्याल

उसका पति उसके पास जा रहा था, जो उक्त महाशय की उमंग का शिकार हो गया। मैंने यथाशक्तिपूर्ण प्रबंध किया था कि जब तक कोई बंदूक लेकर सामना करने न आए, या मुकाबले में गोली न चले तब तक किसी आदमी पर फायर न होने पाए। मैं नर-हत्या करके डकैती को भीषण रूप देना नहीं चाहता था। फिर भी मेरा कहा न मानकर अपना काम छोड़ गोली चला देने का यह परिणाम हुआ। गोली चलाने की ड्यूटी जिनको मैंने दी थी वे बड़े दक्ष तथा अनुभवी मनुष्य थे, उनसे भूल होना असंभव है। उन लोगों को मैंने देखा कि वे अपने स्थान से पाँच मिनट बाद पाँच फायर करते थे। यही मेरा आदेश था।

संदूक तोड़कर तीन गठरियों में थैलियाँ बाँधीं। सबसे कई बार कहा— देख लो कोई सामान रह तो नहीं गया। इस पर भी एक महाशय चद्दर डाल आए। रास्ते में थैलियों में से रुपया निकालकर गठरी बाँधी और उसी समय लखनऊ शहर में आ पहुँचे। किसी ने पूछा भी नहीं, कौन हो, कहाँ से आए हो ? इस प्रकार दस आदमियों ने एक गाड़ी को रोककर लूट लिया। उस गाड़ी में चौदह मनुष्य ऐसे थे, जिनके पास बंदूक या रायफलें थीं। दो अंग्रेज सशस्त्र फौजी जवान भी थे, पर सब शांत रहे। ड्राइवर महाशय तथा एक इंजीनियर महाशय दोनों का बुरा हाल था। वे दोनों अंग्रेज थे। ड्राइवर महाशय इंजन में लेटे रहे। इंजीनियर महाशय पाखाने में जा छिपे। हमने कह दिया था कि मुसाफिरों से कुछ न कहेंगे सिर्फ सरकार का माल लूटेंगे। इस कारण मुसाफिर भी शांतिपूर्वक बैठे रहे। समझे कि तीस-चालीस आदमियों ने गाड़ी को चारों ओर से घेर लिया है। केवल दस युवकों ने इतना बड़ा आतंक फैला दिया। साधारणतः इस बात पर बहुत से लोग विश्वास करने में भी संकोच करेंगे कि दस नवयुवकों ने गाड़ी खड़ी करके लूट ली। जो भी हो वास्तव में बात यही थी। इन दस कार्यकर्त्ताओं में अधिकतर तो ऐसे थे जो आयु में सिर्फ लगभग बाईस वर्ष के होंगे और जो शरीर से बड़े पुष्ट भी न थे। इस सफलता को देखकर मेरा साहस बहुत बढ़ गया। मेरा जो विचार था, वह अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ। पुलिस वालों की वीरता

का मुझे अंदाजा था। इस घटना से भविष्य के कार्य की बहुत बड़ी आशा बँध गई। नवयुवकों का भी उत्साह बढ़ गया। जितना कर्ज़ा था निपटा दिया। अस्त्रों की खरीद के लिए लगभग एक हजार रुपये भेज दिए। प्रत्येक केन्द्र के कार्यकर्त्ताओं को यथास्थान भेजकर दूसरे प्रांतों में भी कार्य-विस्तार करने का निर्णय करके कुछ प्रबंध किया। एक युवक-दल ने बम बनाने का प्रबंध किया, मुझसे भी सहायता चाही, मैंने आर्थिक सहायता देकर अपना एक सदस्य भेजने का वचन दिया। किंतु कुछ त्रुटियाँ हुईं, जिससे संपूर्ण दल अस्त-व्यस्त हो गया।

मैं इस विषय में कुछ भी न जान सका कि दूसरे देश के क्रांतिकारियों ने प्रारंभिक अवस्था में हम लोगों की भाँति प्रयत्न किया या नहीं। यदि पर्याप्त अनुभव होता तो इतनी साधारण भूलें न करते। त्रुटियों के होते हुए भी कुछ भी न बिगड़ता और न कुछ भेद खुलता, न इस अवस्था को पहुँचते, क्योंकि मैंने जो संगठन किया था उसमें किसी ओर से मुझे कमजोरी न दिखाई देती थी। कोई भी किसी प्रकार की त्रुटि न समझ सकता था। इसी कारण आँख बंद किए बैठे रहे। किन्तु आस्तीन में साँप छिपा हुआ था, ऐसा गहरा मुँह मारा कि चारों खाने चित्त कर दिया।

जिन्हें हम हार समझे थे गला अपना सजाने को,
वही अब नाग बन बैठे हमारे काट खाने को।

नवयुवकों में आपस की होड़ के कारण बहुत विवाद तथा कलह भी हो जाती थी, जो भयंकर रूप धारण कर लेती। मेरे पास जब मामला आता तो मैं प्रेमपूर्वक समिति की दशा को देखकर, सबको शांत कर देता। कभी नेतृत्व को लेकर वाद-विवाद चल जाता। एक केंद्र के निरीक्षक से वहाँ के कार्यकर्त्ता अत्यंत असंतुष्ट थे। क्योंकि निरीक्षक से अनुभवहीनता के कारण कुछ भूलें हो गई थीं। यह अवस्था देख मुझे बड़ा खेद तथा आश्चर्य हुआ, क्योंकि नेतागिरी का भूत सबसे भयानक होता है। जिस समय से यह भूत खोपड़ी पर सवार होता है, उसी समय से सब काम चौपट हो जाता है। केवल एक-दूसरे के दोष देखने में समय

व्यतीत होता है और वैमनस्य बढ़ने से बड़े भयंकर परिणाम होते हैं। इस प्रकार के समाचार सुनकर मैंने सबको एकत्रित किया और खूब फटकारा। सब अपनी त्रुटि समझकर पछताए और प्रीतिपूर्वक आपस में मिलकर कार्य करने लगे। पर ऐसी अवस्था हो गई थी कि दलबंदी की नौबत आ गई थी। इस प्रकार से तो दलबंदी हो ही गई थी। पर मुझ पर सब की श्रद्धा थी और मेरी राय को सब मान लेते थे। सब कुछ होने पर भी मुझे किसी ओर से किसी प्रकार का संदेह न था। किंतु परमात्मा को ऐसा ही स्वीकार था, जो इस अवस्था का दर्शन करना पड़ा।

गिरफ्तारी

काकोरी डकैती होने के बाद से ही पुलिस बहुत सचेत हुई। बड़े जोरों के साथ जाँच आरंभ हो गई। शाहजहाँपुर में कुछ नए व्यक्तियों के दर्शन हुए। पुलिस के कुछ विशेष सदस्य मुझसे भी मिले। चारों ओर शहर में यही चर्चा थी कि रेलवे डकैती किसने कर ली ? उन्हीं दिनों शहर में डकैती के एक-दो नोट निकल आए, अब तो पुलिस-जाँच-पड़ताल और भी बढ़ने लगी। कई मित्रों ने मुझसे कहा भी कि सतर्क रहो। दो एक सज्जनों ने निश्चित समाचार दिया कि मेरी गिरफ्तारी जरूर हो जाएगी। मेरी समझ में कुछ न आया। मैंने विचार किया कि यदि गिरफ्तारी हो भी गई तो पुलिस को मेरे विरुद्ध कुछ भी प्रमाण न मिल सकेगा। अपनी बुद्धिमता पर कुछ अधिक विश्वास था। अपनी बुद्धि के सामने दूसरों की बुद्धि को तुच्छ समझता था। कुछ यह भी विचार था कि देश की सहानुभूति की परीक्षा की जाए। जिस देश पर हम अपना बलिदान देने को तैयार हैं, उस देश के वासी हमारे साथ कितनी सहानुभूति रखते हैं ? कुछ जेल का अनुभव भी प्राप्त करना था। वास्तव में, मैं काम करते-करते थक गया था। भविष्य के कार्यों में अधिक नर-हत्या का ध्यान करके मैं हतबुद्धि-सा हो गया था। मैंने किसी के कहने की कोई भी चिंता न की।

रात्रि के समय ग्यारह बजे के लगभग एक मित्र के यहाँ से अपने घर पर

गया। रास्ते में खुफिया पुलिस के सिपाहियों से भेंट हुई। कुछ विशेष रूप से उस समय भी वे मेरी देखभाल कर रहे थे। मैंने कोई चिंता न की और घर पर जाकर सो गया। प्रातःकाल चार बजने पर जगा, शौचादि से निवृत्त होने पर बाहर द्वार पर बंदूक के कुंदों का शब्द सुनाई दिया। मैं समझ गया कि पुलिस आ गई है। मैं तुरंत द्वार खोलकर बाहर गया। एक पुलिस अफसर ने बढ़कर हाथ पकड़ लिया। मैं गिरफ्तार हो गया। मैं केवल एक अंगोछा पहने हुए था। पुलिस वाले को अधिक भय न था। पूछा कि घर में कोई अस्त्र हो, तो दे दीजिए। मैंने कहा कोई आपत्तिजनक वस्तु घर में नहीं। उन्होंने बड़ी सज्जनता की। मेरे हथकड़ी आदि कुछ न डाली। मकान की तलाशी लेते समय एक पत्र मिल गया, जो मेरी जेब में था। कुछ होनहार कि तीन-चार पत्र मैंने लिखे थे। डाकखाने में डालने को भेजे, तब तक डाक निकल चुकी थी। मैंने वे सब इस ख्याल से अपने पास ही रख लिए कि डाक के बंबे में डाल दूँगा। फिर विचार किया जैसे बंबे में पड़े रहेंगे, वैसे जेब में पड़े हैं। मैं उन पत्रों को वापस घर ले आया। उन्हीं में एक पत्र आपत्तिजनक था जो पुलिस के हाथ लग गया। गिरफ्तार होकर पुलिस कोतवाली पहुँचा। वहाँ पर खुफिया पुलिस के एक अफसर से भेंट हुई। उस समय उन्होंने कुछ ऐसी बातें कीं, जिन्हें मैं या एक व्यक्ति और जानता था। कोई तीसरा व्यक्ति इस प्रकार से ब्यौरेवार नहीं जान सकता था। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ किंतु संदेह इस कारण न हो सका कि मैं दूसरे व्यक्ति के कार्यों पर अपने शरीर के समान ही विश्वास रखता था। शाहजहाँपुर में जिन-जिन व्यक्तियों की गिरफ्तारी हुई, वह भी बड़ी आश्चर्यजनक प्रतीत होती थी। जिन पर कोई संदेह भी न था, पुलिस उन्हें कैसे जान गई ? दूसरे स्थानों पर क्या हुआ कुछ भी न मालूम हो सका। जेल पहुँच जाने पर मैं थोड़ा-बहुत अनुमान कर सका, कि सम्भवतः दूसरे स्थानों में भी गिरफ्तारियाँ हुई होंगी। गिरफ्तारियों के समाचार सुनकर शहर के सभी मित्र भयभीत हो गए। किसी से इतना भी न हो सका कि जेल में हम लोगों के पास समाचार भेजने का प्रबंध कर देता।

जेल

जेल में पहुँचते ही खुफिया पुलिस वालों ने यह प्रबंध कराया कि हम सब एक-दूसरे से अलग रखे जाएँ, किंतु फिर भी एक-दूसरे से बातचीत हो जाती थी। यदि साधारण कैदियों के साथ रखते तब तो बातचीत का पूर्ण प्रबंध हो जाता, इस कारण से सबको अलग-अलग तनहाई की कोठरियों में बंद किया गया। यही प्रबंध दूसरे ज़िले की जेलों में भी, जहाँ-जहाँ भी इस संबंध में गिरफ्तारियाँ हुई थीं, किया गया था। अलग-अलग रखने से पुलिस को यह सुविधा होती है कि प्रत्येक से पृथक-पृथक मिलकर बातचीत करते हैं। कुछ भय दिखाते हैं, कुछ इधर-उधर की बातें करके भेद जानने का प्रयत्न करते हैं। अनुभवी लोग तो पुलिस वालों से मिलने से इनंकार ही कर देते हैं। क्योंकि उनसे मिलकर हानि के अतिरिक्त लाभ कुछ भी नहीं होता। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो समाचार जानने के लिए कुछ बातचीत करते हैं। पुलिस वालों से मिलना ही क्या है। वे तो चालबाजी से बात निकालने की ही रोटी खाते हैं। उनका जीवन इसी प्रकार की बातों में व्यतीत होता है। नवयुवक दुनियादारी क्या जानें ? न वे इस प्रकार की बातें ही बना सकते हैं।

जब किसी तरह कुछ समाचार ही न मिलते तब तो जी बहुत घबराता। यही पता नहीं चलता कि पुलिस क्या कर रही है, भाग्य का क्या निर्णय होगा ? जितना समय व्यतीत होता जाता था उतनी ही चिंता बढ़ती जाती थी। जेल-अधिकारियों से मिलकर पुलिस यह भी प्रबंध करा देती है कि मुलाकात करने वालों से घर के संबंध में बातचीत करें, मुकदमे के संबंध में कोई बातचीत न करें। सुविधा के लिए सबसे प्रथम यह परमावश्यक है कि एक विश्वास-पात्र वकील किया जाए जो ठीक समय पर आकर बातचीत कर सके। वकील के लिए किसी प्रकार की रुकावट नहीं हो सकती। वकील के साथ अभियुक्त की जो बातें होती हैं, उनको कोई दूसरा सुन नहीं सकता। क्योंकि इस प्रकार का कानून है, यह अनुभव बाद में हुआ। गिरफ्तारी के बाद शाहजहाँपुर के वकीलों से मिलना

भी चाहा, किंतु शाहजहाँपुर में ऐसे दब्बू वकील रहते हैं, जो सरकार के विरुद्ध मुकदमे में सहायता देने में हिचकते हैं।

मुझसे खुफिया पुलिस के कप्तान साहब मिले। थोड़ी-सी बातें करके अपनी इच्छा प्रकट की कि मुझे सरकारी गवाह बनाना चाहते हैं। थोड़े दिनों में एक मित्र ने भयभीत होकर कि कहीं वह भी न पकड़ा जाए, बनारसीलाल से भेंट की और समझा-बुझाकर उसे सरकारी गवाह वना दिया। बनारसीलाल बहुत घबराता था कि कौन सहायता देगा, सजा जरूर हो जाएगी। यदि किसी वकील से मिल लिया होता तो उसका धैर्य न टूटता। पं. हरकरननाथ शाहजहाँपुर आए, जिस समय वह अभियुक्त श्री प्रेमकृष्ण खन्ना से मिले, उस समय अभियुक्त ने पं. हरकरननाथ से बहुत कुछ कहा कि मुझसे तथा दूसरे अभियुक्तों से मिल लें। यदि वह कहा मान जाते और मिल लेते तो बनारसीलाल को साहस हो जाता और वह डटा रहता। उसी रात्रि को पहले एक इंस्पैक्टर बनारसीलाल से मिले। फिर जब मैं सो गया तब बनारसीलाल को निकालकर ले गए। प्रातःकाल पाँच बजे के करीब, जब बनारसीलाल की कोठरी में से कुछ शब्द सुनाई दिया, तो मैंने बनारसीलाल को पुकारा। पहरे पर जो कैदी था, उससे मालूम हुआ, बनारसीलाल बयान दे चुके। बनारसीलाल के संबंध में सब मित्रों ने कहा था कि इससे अवश्य धोखा होगा, पर मेरी बुद्धि में कुछ न समाया था। प्रत्येक जानकार ने बनारसीलाल के संबंध में यही भविष्यवाणी की थी कि वह आपत्ति पड़ने पर अटल न रह सकेगा। इस कारण सबने उसे किसी प्रकार के गुप्त कार्य में लेने की मनाही की थी। अब तो जो होना था सो हो ही गया।

थोड़े दिनों बाद जिला कलक्टर मिले। कहने लगे फाँसी हो जाएगी। बचना हो तो बयान दे दो। मैंने कुछ उत्तर न दिया। तत्पश्चात् खुफिया पुलिस के कप्तान साहब मिले, बहुत-सी बातें कीं। कई कागज दिखलाए। मैंने कुछ-कुछ अंदाजा लगाया कि कितनी दूर तक ये लोग पहुँच गए हैं। मैंने कुछ बातें बनाईं, ताकि पुलिस का ध्यान दूसरी ओर चला जाए, परंतु उन्हें तो विश्वसनीय सूत्र हाथ

लग चुका था, वे बनावटी बातों पर क्यों विश्वास करते ? अंत में उन्होंने अपनी यह इच्छा प्रकट की कि यदि मैं बंगाल का संबंध बताकर कुछ बोलशेविक् संबंध के विषय में अपना बयान दे दूँ, तो वे मुझे थोड़ी-सी सज़ा करा देंगे, और सज़ा के थोड़े दिनों बाद ही जेल से निकालकर इंग्लैंड भेज देंगे और पंद्रह हज़ार रुपये पारितोषिक (इनाम) भी सरकार से दिला देंगे। मैं मन-ही-मन में बहुत हँसता था। अंत में एक दिन फिर मुझसे जेल में मिलने को गुप्तचर विभाग के कप्तान साहब आए। मैंने अपनी कोठरी में से निकलने से ही इनकार कर दिया। वह कोठरी पर आकर बहुत-सी बातें करते रहे, अंत में परेशान होकर चले गए।

शिनाख्त (पहचान) कराई गई। पुलिस को जितने आदमी मिल सके उतने आदमी लेकर शिनाख्त कराई। भाग्यवश श्री अईनुद्दीन साहब मुकदमे के मजिस्ट्रेट मुकर्रर हुए, उन्होंने जी भर कर पुलिस की मदद की। शिनाख्तों में अभियुक्तों को साधारण मजिस्ट्रेटों की भाँति भी सुविधाएँ न दीं। दिखाने के लिए कागजी कार्यवाही खूब साफ रखी। जबान के बड़े मीठे थे। प्रत्येक अभियुक्त से बड़े तपाक से मिलते थे। बड़ी मीठी-मीठी बातें करते थे। सब समझते थे कि हमसे सहानुभूति रखते हैं। कोई न समझ सका कि अंदर-ही-अंदर घाव कर रहे हैं। इतना चालाक अफ़सर शायद ही कोई दूसरा हो। जब तक मुकदमा उनकी अदालत में रहा, किसी को कोई शिकायत का मौका ही न दिया। यदि कभी कोई बात भी हो जाती तो ऐसे ढंग से उसे टालने की कोशिश करते कि किसी को बुरा ही न लगता। बहुधा ऐसा भी हुआ कि खुली अदालत में अभियुक्तों से क्षमा तक माँगने में संकोच न किया। किंतु कागजी कार्यवाही में इतने होशियार थे कि जो कुछ लिखा सदैव अभियुक्तों के विरुद्ध। जब मामला सैशन के सुपुर्द किया और आज्ञापत्र में युक्तियाँ दीं, तब सब की आँखें खुलीं कि कितना गहरा घाव मार दिया।

मुकदमा अदालत में न आया था, उसी समय रायबरेली में बनवारीलाल की गिरफ्तारी हुई। मुझे हाल मालूम हुआ। मैंने पं. हरकरननाथ से कहा कि सब काम

छोड़कर सीधे रायबरेली जाएँ और बनारसीलाल से मिलें, किन्तु उन्होंने मेरी बातों पर कुछ भी ध्यान न दिया। मुझे बनारसीलाल पर पहले ही संदेह था, क्योंकि उसका रहन-सहन इस प्रकार का था कि जो ठीक न था। जब दूसरे सदस्यों के साथ रहता तब उनसे कहा करता कि मैं जिला संगठनकर्त्ता हूँ। मेरी गणना अधिकारियों में है। मेरी आज्ञा का पालन किया करो। मेरे जूठे बर्तन मला करो। कुछ विलासिता-प्रिय भी था। प्रत्येक समय शीशा, कंघा तथा साबुन साथ रखता था। मुझे इससे भय था, किन्तु हमारे दल के एक खास आदमी का वह विश्वासपात्र रह चुका था। उन्होंने सैकड़ों रुपये देकर उसकी सहायता की थी। इसी कारण हम लोग भी अंत तक उसे मासिक सहायता देते रहे। मैंने बहुत कुछ हाथ-पैर मारे पर कुछ भी न चली और जिसका मुझे भय था, वही हुआ। भाड़े का टट्टू अधिक बोझ न सँभाल सका, उसने बयान दे दिए। जब तक यह गिरफ्तार न हुआ था कुछ सदस्यों ने इसके पास जो अस्त्र थे वे माँगे, पर उसने न दिए। जिला अफसर की शान में रहा। गिरफ्तार होते ही सब शान मिट्टी में मिल गई। बनवारीलाल के बयान दे देने से पुलिस का मुकदमा मजबूती पकड़ गया। यदि वह अपना बयान न देता तो मुकदमा बहुत कमजोर था। सब लोग चारों ओर से एकत्रित करके लखनऊ जिला जेल में रखे गए। थोड़े समय तक अलग-अलग रहे, किन्तु अदालत में मुकदमा आने से पहले ही एकत्रित कर दिए गए।

मुकदमे में रुपये की जरूरत थी। अभियुक्तों के पास क्या था? उनके लिए धन-संग्रह करना कितना कठिन था। न जाने किस प्रकार निर्वाह करते थे। अधिकतर अभियुक्तों का कोई संबंधी पैरवी भी न कर सकता था। जिस किसी के कोई था भी, वह बाल-बच्चों तथा घर को सँभालता या इतने समय तक घर-बार छोड़कर मुकदमा करता? यदि चार अच्छे पैरवी करने वाले होते तो पुलिस का तीन-चौथाई मुकदमा टूट जाता। लखनऊ जैसे शहर में मुकदमा हुआ, जहाँ अदालत में कोई भी शहर का आदमी न आता था। इतना भी तो न हुआ कि एक अच्छा प्रेस-रिपोर्टर ही रहता, जो मुकदमे की सारी कार्यवाही को, जो कुछ

अदालत में होता था, प्रेस में भेजता रहता। इंडियन डेली टेलीग्राफ वालों ने कृपा की। यदि कोई अच्छा रिपोर्टर आ भी गया, और जो कुछ अदालत की कार्यवाही ठीक-ठीक प्रकाशित हुई तो पुलिस वालों ने जज साहब से मिलकर तुरंत उस रिपोर्टर को निकलवा दिया। जनता की कोई सहानुभूति न थी। जो पुलिस के जी में आया, करती रही। इन सारी बातों को देखकर जज का साहस बढ़ गया। उसने जैसा जी चाहा सब कुछ किया। अभियुक्त चिल्लाए– "हाय ! हाय !" पर कुछ भी सुनवाई न हुई। और बातें तो दूर श्री दामोदर स्वरूप सेठ को पुलिस ने जेल में सड़ा डाला। लगभग एक वर्ष तक वे तड़पते रहे। सौ पौंड से केवल छियासठ पौंड वजन रह गया। कई बार जेल में मरणासन्न हो गए। नित्य बेहोशी आ जाती थी। लगभग दस मास तक कुछ भी भोजन न कर सके। जो कुछ छटाँक-दो-छटाँक दूध किसी प्रकार पेट में पहुँच जाता था, उससे इस प्रकार की विकट वेदना (पीड़ा) होती थी कि कोई उनके पास खड़ा होकर उस छटपटाने के दृश्य को देख न सकता था। एक मैडिकल बोर्ड बनाया गया, जिसमें तीन डाक्टर थे उनकी कुछ समझ में न आया, तो कह दिया कि सेठजी को बीमारी ही नहीं है।

जब से काकोरी षड्यंत्र के अभियुक्त जेल में एक साथ रहने लगे, तभी से उनमें एक अद्भुत परिवर्तन हुआ, जिसे देखकर मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। जेल में सबसे बड़ी बात तो यह थी कि प्रत्येक आदमी अपनी नेतागिरी की दुहाई देता था। कोई भी बड़े-छोटे का भेद न रहा। बड़े तथा अनुभवी पुरुषों की बातों की अवहेलना होने लगी। अनुशासन का नाम भी न रहा। बहुधा उलटे जवाब मिलने लगे। छोटी-छोटी बातों पर मतभेद हो जाता। इस प्रकार का मतभेद कभी-कभी वैमनस्य तक का रूप धारण कर लेता। आपस में झगड़ा भी हो जाता। खैर! जहाँ चार बर्तन रहते हैं, वहाँ खटकते ही हैं। ये लोग तो मनुष्य देहधारी थे।

एक बार विचार हुआ कि सरकार से समझौता कर लिया जाए। बैरिस्टर साहब ने खुफिया पुलिस के कप्तान से परामर्श आरंभ किया। किंतु यह सोचकर कि इससे क्रांतिकारी दल की निष्ठा न मिट जाए, यह विचार छोड़ दिया गया।

युवकों की राय हुई कि अनशन व्रत करके सरकार से हवालाती की हालत में ही माँगें पूरी करा ली जाएँ क्योंकि लंबी-लंबी सजाएँ होंगी। संयुक्त प्रांत की जेलों में साधारण कैदियों का भोजन खाते हुए सजा काटकर जेल से जिंदा निकलना कोई सरल कार्य नहीं। जितने राजनैतिक कैदी षड्यंत्रों के संबंध में सजा पाकर इस प्रांत की जेलों में रखे गए, उनमें से पाँच-छः महात्माओं ने इस प्रांत की जेलों के व्यवहार के कारण ही जेलों में प्राण त्याग दिए।

इस विचार के अनुसार काकोरी के लगभग सब हवालातियों ने अनशन व्रत आरंभ कर दिया। दूसरे ही दिन सब पृथक कर दिए गए। कुछ व्यक्ति डिस्ट्रिक्ट जेल में रखे गए। कुछ सेंट्रल जेल भेजे गए। अनशन करते पंद्रह दिन व्यतीत हो गए, तब सरकार के कान पर भी जूँ रेंगी। उधर सरकार का काफी नुकसान हो रहा था। जज साहब तथा दूसरे कचहरी के कार्यकर्त्ताओं को घर बैठे वेतन देना पड़ता था। सरकार को स्वयं चिंता थी कि किसी प्रकार अनशन छूटे। जेल अधिकारियों ने पहले आठ आने रोज तय किए। मैंने उस समझौते को अस्वीकार कर दिया और बड़ी कठिनाई से दस आने रोज पर ले आया। उस अनशन व्रत में पंद्रह दिन तक मैंने जल पीकर निर्वाह किया था। सोलहवें दिन नाक से दूध पिलाया गया था। श्री रोशनसिंहजी ने भी इसी प्रकार मेरा साथ दिया था। वे पंद्रह दिन तक बराबर चलते-फिरते रहे थे। स्नानादि करके अपने दैनिक कर्म भी कर लिया करते थे। दस दिन तक तो मेरे मुख को देखकर अनजान पुरुष यह अनुमान भी नहीं कर सकता था कि मैं अन्न नहीं खाता।
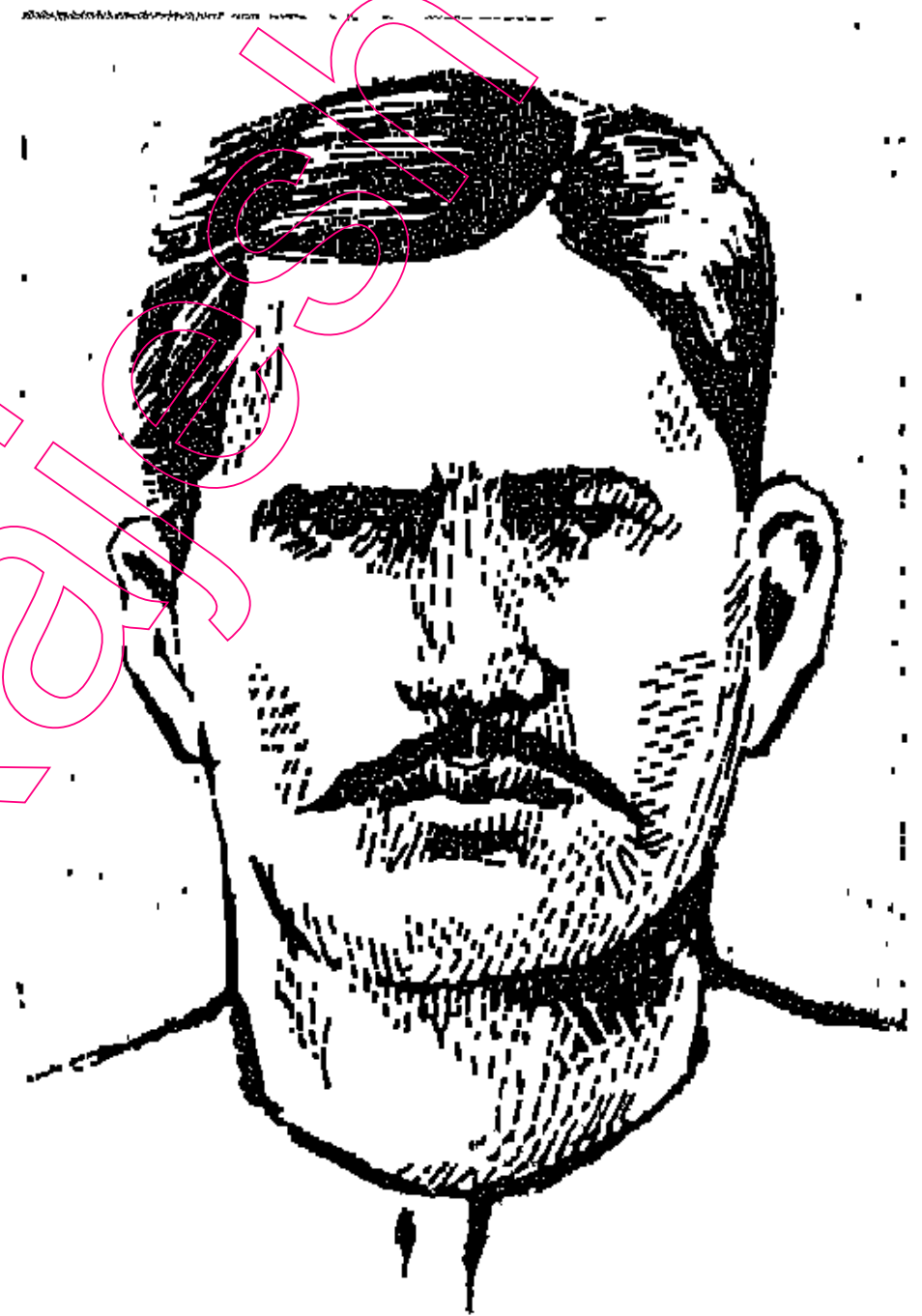
ठाकुर रोशनसिंह

जिस दिन सफाई की बहस मैंने समाप्त की, सरकारी वकील ने उठकर मुक्त कंठ से मेरी बहस की प्रशंसा की कि सैकड़ों वकीलों से अच्छी बहस की। मैंने नमस्कार कर उत्तर दिया कि आपके चरणों की कृपा है, क्योंकि इस मुकदमे के पहले मैंने किसी अदालत में समय न व्यतीत किया था, सरकारी तथा सफाई के वकीलों की जिरह को सुनकर मैंने भी साहस किया था।

अभियोग

काकोरी में रेलवे ट्रेन लुट जाने के बाद ही पुलिस का विशेष विभाग उक्त घटना का पता लगाने के लिए तैनात किया गया। एक विशेष व्यक्ति मि. हार्टन इस विभाग के निरीक्षक थे। उन्होंने घटनास्थल तथा रेलवे पुलिस की रिपोर्टों को देखकर अनुमान किया कि संभव है कि यह कार्य क्रांतिकारियों का हो। प्रांत के क्रांतिकारियों की जाँच शुरू हुई। उसी समय शाहजहाँपुर में रेलवे डकैती के तीन नोट मिले। चोरी गए नोटों की संख्या सौ से अधिक थी, जिनका मूल्य लगभग एक हजार रुपये होगा। इनमें से लगभग सात सौ या आठ सौ रुपये के मूल्य के नोट सीधे सरकार के खजाने में पहुँच गए। अतः सरकार नोटों के मामले को चुपचाप पी गई। ये नोट लिस्ट प्रकाशित होने से पूर्व ही सरकारी खजाने में पहुँच चुके थे। पुलिस का लिस्ट प्रकाशित करना व्यर्थ हुआ। सरकारी खजाने में से ही जनता के पास कुछ नोट लिस्ट प्रकाशित होने के पूर्व ही पहुँच गए थे, इस कारण वे जनता के पास निकल आए।

उन्हीं दिनों में ज़िला खुफिया पुलिस को मालूम हुआ कि मैं 8, 9 तथा 10 अगस्त सन् 1925 ई. को शाहजहाँपुर नहीं था। अधिक जाँच होने लगी। इसी जाँच-पड़ताल में पुलिस को मालूम हुआ कि गवर्नमेंट स्कूल शाहजहाँपुर के इंदुभूषण मित्र नामक एक विद्यार्थी के पास मेरे क्रांतिकारी दल से संबंधित पत्र आते हैं, जो वह मुझे दे आता है। स्कूल के हैडमास्टर द्वारा इंदुभूषण के पास आए हुए पत्रों की नकल करा कर हार्टन साहब के पास भेजी जाती रही। इन्हीं पत्रों से

हार्टन साहब को मालूम हुआ कि मेरठ में प्रांत की क्रांतिकारी समिति की बैठक होने वाली है। उन्होंने एक सब इंस्पेक्टर को मेरठ अनाथालय में, जहाँ पर बैठक होने का पता चला था, भेजा। उन्हीं दिनों हार्टन साहब को किसी विशेष सूत्र से मालूम हुआ कि शीघ्र ही कनखल में डाका डालने का प्रबंध क्रांतिकारी समिति के सदस्य कर रहे थे और संभव है कि किसी बड़े शहर में डाकखाने की आमदनी लूटी जाए। हार्टन साहब को एक सूत्र से एक पत्र मिला जो मेरे हाथ का लिखा था। इस पत्र में सितंबर में होने वाले 'श्राद्ध'-8 का जिक्र था जिसकी 13 तारीख निश्चित की गई थी। पत्र में था कि दादा का श्राद्ध नं. 1 पर 13 सितंबर को होगा, अवश्य पधारिए। मैं अनाथालय में मिलूँगा। पत्र पर "रुद्र" के हस्ताक्षर थे।

आगामी डकैतियों को रोकने के लिए हार्टन साहब ने प्रांत भर में 26 सितंबर सन् 1925 ई. को लगभग तीस व्यक्तियों को गिरफ्तार किया। उन्हीं दिनों में इंदुभूषण के पास आए हुए पत्र से पता लगा कि कुछ वस्तुएँ बनारस में किसी विद्यार्थी की कोठरी में बंद हैं। अनुमान किया गया कि संभव है कि वे हथियार हों। अनुसंधान करने से हिन्दू विश्वविद्यालय के एक विद्यार्थी की कोठरी से दो राइफलें निकलीं। उस विद्यार्थी को कानपुर में गिरफ्तार किया गया। इंदुभूषण ने मेरी गिरफ्तारी की सूचना एक पत्र द्वारा बनारस को भेजी। जिसके पास

राजेन्द्र लाहिड़ी

पत्र भेजा था, उसे पुलिस गिरफ्तार कर चुकी थी, क्योंकि उसी, श्री रामनाथ पाण्डेय के पते का पत्र मेरी गिरफ्तारी के समय मेरे मकान से पाया गया था।
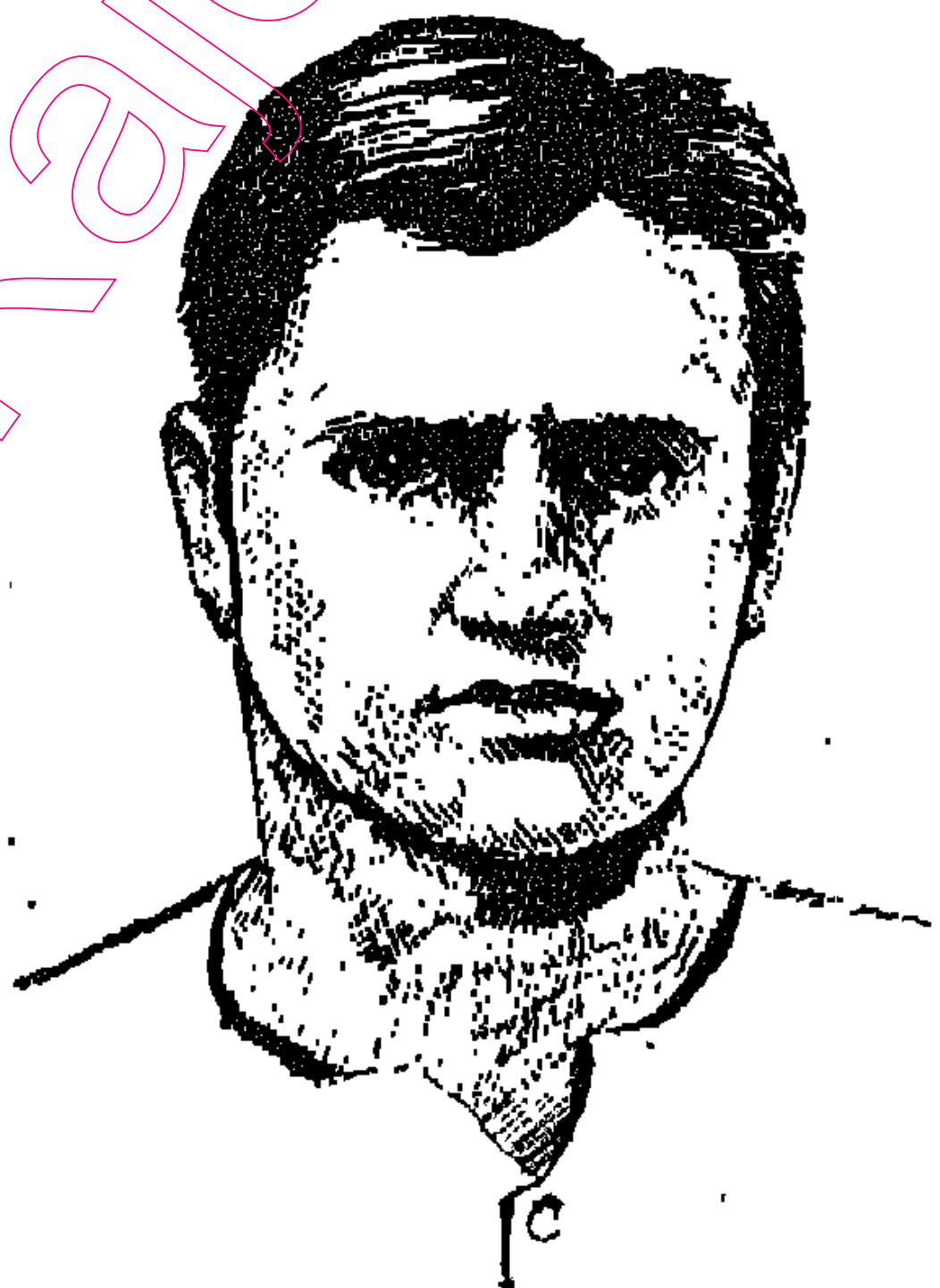
रामकृष्ण खत्री

रामनाथ पाण्डेय के पत्र पुलिस के पास पहुँचे थे। अतः इंदुभूषण को गिरफ्तार किया गया। इंदुभूषण ने दूसरे दिन अपना बयान दे दिया। गिरफ्तार किए हुए व्यक्तियों में से कुछ से मिल-मिलाकर बनारसीलाल ने भी, जो शाहजहाँपुर की जेल में था, अपना बयान दे दिया और वह सरकारी गवाह बना लिया गया। वह कुछ अधिक जानता था। इसके बयान से क्रांतिकारी पत्र के पार्सलों का पता चला। बनारस के डाकखाने से जिन-जिनके पास पार्सल भेजे गए थे उनको पुलिस ने गिरफ्तार किया। कानपुर में गोपीनाथ ने, जिसके नाम से पार्सल गया था, गिरफ्तार होते ही पुलिस को बयान दे दिया और वह सरकारी गवाह बना लिया गया। इसी प्रकार रायबरेली में स्कूल के विद्यार्थी कुँवर बहादुर के पास पार्सल आया था, उसने भी गिरफ्तार होते ही बयान दे दिया और सरकारी गवाह बना लिया गया। इनके पास मनीआर्डर भी आया करते थे, क्योंकि यह बनवारीलाल का पोस्ट बॉक्स (डाक पाने वाला) था। इसने बनवारीलाल के एक रिश्तेदार का पता बता दिया, जहाँ तलाशी लेने से बनवारीलाल का एक ट्रंक मिला। इस ट्रंक में एक कारतूसी पिस्तौल, एक कारतूसी फौजी रिवाल्वर तथा कुछ कारतूस पुलिस के हाथ लगे। श्री बनवारीलाल की खोज हुई। बनवारीलाल भी पकड़ लिए गए। गिरफ्तारी के थोड़े दिनों बाद ही पुलिस वाले मिले, उल्टा-सीधा सुझाया और बनवारीलाल ने भी अपना बयान दे दिया तथा इकबाली मुलजिम बनाए गए। बनवारीलाल ने काकोरी डकैती में अपना सम्मिलित होना बताया था। उधर कलकत्ते में दक्षिणेश्वर में एक मकान में बमबनाने का सामान, एक बना हुआ बम, 7 रिवाल्वर, पिस्तौल तथा कुछ

राजद्रोहात्मक साहित्य पकड़ा गया। इसी मकान में श्री राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, जो इस मुकदमे में फरार थे, गिरफ्तार हुए।

इंदुभूषण के गिरफ्तार हो जाने के बाद उसके हैडमास्टर को एक पत्र मध्य प्रांत से मिला, जिसे उसने हार्टन साहब के पास वैसा ही भेज दिया। इस पत्र से एक व्यक्ति मोहन लाल खत्री का चाँदा में पता चला। वहाँ से पुलिस ने खोज लगाकर पूना में श्री रामकृष्ण खत्री को गिरफ्तार करके लखनऊ भेजा। बनारस में भेजे हुए पार्सलों के संबंध से जबलपुर में श्री प्रणवेशकुमार चटर्जी को गिरफ्तार करके भेजा गया। कलकत्ता से श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल, जिन्हें बनारस षड्यंत्र से आजन्म कालेपानी की सजा हुई थी, और जिन्हें बांकुरा में "क्रांतिकारी" पर्चे बाँटने के कारण दो वर्ष की सजा हुई थी, इस मुकदमे में लखनऊ भेजे गए। श्री योगेशचन्द्र चटर्जी बंगाल आर्डिनेंस के कैदी हजारी बाग जेल से भेजे गए। आप अक्तूबर सन् 1924 ई. में कलकत्ते में गिरफ्तार हुए थे। आपके

शचीन्द्रनाथ सान्याल

पास दो कागज पाए गए थे, जिनमें संयुक्त प्रांत के सब जिलों का नाम था, और लिखा था कि बाईस ज़िलों में समिति का कार्य हो रहा है। ये कागज इस षड्यंत्र के संबंध के समझे गए। श्री राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी दक्षिणेश्वर बम केस में दस वर्ष के दीपांतर की सजा पाने के बाद इस मुकदमे में लखनऊ भेजे गए। अब लगभग

योगेशचन्द्र चटर्जी

छत्तीस व्यक्ति गिरफ्तार हुए थे। अट्ठाईस पर मजिस्ट्रेट की अदालत में मुकदमा चला। तीन व्यक्ति– श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी, श्री चन्द्रशेखर आज़ाद और श्री अशफाकउल्ला खाँ फरार रहे। बाकी सब मुकदमा अदालत में आने से पहले छोड़ दिए गए। अट्ठाईस में दो पर से मजिस्ट्रेट की अदालत में मुकदमा उठा लिया गया। दो को सरकारी गवाह बनाकर उन्हें माफी दी गई। अंत में मजिस्ट्रेट ने इक्कीस व्यक्तियों को सेशन के सुपुर्द किया। सेशन में मुकदमा आने पर श्री दामोदरस्वरूप सेठ बहुत बीमार हो गए। अदालत न आ सकते थे, अतः अंत में बीस व्यक्ति रह गए। बीस में से दो व्यक्ति श्री शचीन्द्रनाथ विश्वास तथा श्री हरगोविंद सेशन की अदालत में मुक्त हुए। बाकी अठारह को सजाएँ हुईं।

श्री बनवारीलाल इकबाली मुलजिम हो गए। वे रायबरेली जिला कांग्रेस कमेटी के मंत्री भी रह चुके थे। उन्होंने असहयोग आंदोलन में छः मास का कारावास भी भोगा था। इस पर भी पुलिस की धमकी से प्राण संकट में पड़ गए। आप ही हमारी समिति के ऐसे सदस्य थे कि जिन पर समिति का सबसे अधिक धन व्यय किया

शचीन्द्रनाथ बख्शी

गया। प्रत्येक माह आपको पर्याप्त धन भेजा जाता था। मर्यादा की रक्षा के लिए हम लोग यथाशक्ति बनवारीलाल को मासिक शुल्क दिया करते थे। अपने पेट काटकर इनको मासिक व्यय दिया गया। फिर भी इन्होंने अपने सहायकों की गर्दन पर छुरी चलाई। अधिक-से-अधिक दस वर्ष की सजा हो जाती। जिस प्रकार सबूत इनके विरुद्ध था, वैसे ही, इसी प्रकार के दूसरे अभियुक्तों पर था, जिन्हें दस-दस वर्ष की सजा हुई। यही नहीं पुलिस के बहकाने से सेशन में बयान देते समय जो नई बातें इन्होंने जोड़ीं, उनमें मेरे संबंध में कहा कि रामप्रसाद बिस्मिल डकैतियों के रुपये से अपने परिवार का निर्वाह करता है। इस बात को सुनकर मुझे हँसी भी आई, पर हृदय पर बड़ा आघात लगा कि जिनकी उदर-पूर्ति के लिए प्राणों को संकट में डाला, दिनों को दिन और रात को रात न समझा, बुरी तरह से मार खाई, माता-पिता का कुछ भी ख्याल न किया, वही इस प्रकार आक्षेप करें।

चन्द्रशेखर आजाद

समिति के सदस्यों ने इस प्रकार का व्यवहार किया। बाहर जो साधारण जीवन के सहयोगी थे, उन्होंने भी अद्‌भुत रूप धारण किया। एक ठाकुर साहब के पास काकोरी डकैती का नोट मिल गया था। वह कहीं शहर में पा गए थे। जब गिरफ्तारी हुई, मजिस्ट्रेट के यहाँ जमानत नामंजूर हुई, जज साहब ने चार हज़ार रुपये की जमानत माँगी। कोई जमानती न मिलता था। आपके वृद्ध भाई मेरे पास आए। पैरों पर सिर रखकर रोने लगे। मैंने जमानत कराने का प्रयत्न

किया। मेरे माता-पिता कचहरी जाकर खुले रूप से पैरवी करने को मना करते रहे कि पुलिस खिलाफ है, रिपोर्ट हो जाएगी, पर मैंने एक न सुनी। कचहरी जाकर, कोशिश करके जमानत दाखिल कराई। जेल से उन्हें स्वयं जाकर छुड़ाया। पर जब मैंने उक्त महाशय का नाम उक्त घटना की गवाही देने के लिए सूचित किया, तब पुलिस ने उन्हें धमकाया और उन्होंने पुलिस को तीन बार लिखकर दे दिया कि हम रामप्रसाद को जानते भी नहीं। हिन्दू-मुस्लिम झगड़े में जिनके घरों की रक्षा की थी, जिनके बाल-बच्चे मेरे सहारे मुहल्ले में निर्भयता से निवास करते रहे, उन्होंने ही मेरे खिलाफ झूठी गवाहियाँ बनवाकर भेजीं। कुछ मित्रों के भरोसे पर उनका नाम गवाही में दिया कि जरूर गवाही देंगे। संसार लौट जाए पर वे डिग नहीं सकते। पर वचन दे चुकने पर भी जब पुलिस का दबाव पड़ा, वे ही गवाही देने से इनकार कर गए। जिनको अपना हृदय, सहोदर तथा मित्र समझ कर हर तरह की सेवा करने को तैयार रहता था, जिस प्रकार की आवश्यकता होती यथाशक्ति उनको पूर्ण करने की कोशिश करता था, उनसे इतना भी न हुआ कि कभी जेल पर आकर दर्शन दे जाते, फाँसी की कोठरी में ही आकर संतोषदायक दो बातें कर जाते। एक-दो सज्जनों ने इतनी कृपा तथा साहस किया कि दस मिनट के लिए अदालत में दूर खड़े होकर दर्शन दे गए। यह सब इसलिए कि पुलिस का आतंक छाया हुआ था कि गिरफ्तार न कर लिए जाएँ। इस पर भी जिसने भी जो कुछ किया मैं उसी को अपना सौभाग्य समझता हूँ, और उनका आभारी हूँ—

वह फूल चढ़ाते हैं, तुर्बत[-9] भी दबी जाती।
माशूक[-10] के थोड़े से भी अहसान[-11] बहुत हैं।।

परमात्मा से यही प्रार्थना है कि सब प्रसन्न तथा सुखी रहें। मैंने तो सब बातों को जानकर ही इस मार्ग पर पैर रखा था। मुकदमे के पहले संसार का कोई अनुभव ही न था। न कभी जेल देखी, न किसी अदालत का कोई तजुर्बा (अनुभव) था। जेल में जाकर मालूम हुआ कि किसी नई दुनिया में पहुँच गया। मुकदमे से पहले मैं यह भी नहीं जानता था कि कोई लेखन-कला-विज्ञान भी है,

इसका कोई विशेषज्ञ भी होता है, जो लेखन शैली को देखकर लेखकों का निर्णय कर सकता है। यह भी पता नहीं था कि लेख किस प्रकार मिलाए जाते हैं, एक मनुष्य के लेख में क्या भेद होता है, क्यों भेद होता है, लेखन-कला विशेषज्ञ हस्ताक्षर को प्रमाणित कर सकता है, तथा लेखक के वास्तविक लेख में तथा बनावटी लेख में भेद कर सकता है, इस प्रकार का कोई भी अनुभव तथा ज्ञान न रखते हुए भी एक प्रांत की क्रांतिकारी समिति का संपूर्ण भार लेकर उसका संचालन कर रहा था। बात यह है कि क्रांतिकारी कार्य की शिक्षा देने के लिए कोई पाठशाला तो है ही नहीं। यही हो सकता था कि पुराने अनुभवी क्रांतिकारियों से कुछ सीखा जाए। न जाने कितने व्यक्ति वंगाल तथा पंजाब के षड्यंत्रों में गिरफ्तार हुए, पर किसी ने भी यह प्रयास न किया कि एक इस प्रकार की पुस्तक लिखी जाए, जिससे नवागंतुकों को कुछ अनुभव की बातें मालूम होतीं।

लोगों को इस बात की बड़ी उत्कण्ठा होगी कि क्या यह पुलिस का भाग्य ही था, जो सब बना बनाया मामला हाथ आ गया। क्या पुलिस वाले परोक्ष ज्ञानी होते हैं ? कैसे गुप्त बातों का पता चला लेते हैं ? कहना पड़ता है कि यह देश का दुर्भाग्य! सरकार का सौभाग्य ! ! बंगाल पुलिस के संबंध में तो अधिक कहा नहीं जा सकता, क्योंकि मेरा कुछ विशेषानुभव नहीं। इस प्रांत की खुफिया पुलिस वाले तो महान भोंदू होते हैं। जिन्हें साधारण ज्ञान भी नहीं होता। साधारण पुलिस से खुफिया में आते हैं। साधारण पुलिस की दरोगाई करते हैं, मजे में लंबी-लंबी घूस खाकर बड़े-बड़े पेट बढ़ा आराम करते हैं। उनकी बला तकलीफ उठाए। यदि कोई एक-दो चालाक हुए भी तो थोड़े दिन बड़े ओहदे की फिराक में काम दिखाया, दौड़-धूप की, कुछ पद-वृद्धि हो गई और सब काम बंद। इस प्रांत में कोई बाकायदा पुलिस का गुप्तचर विभाग नहीं, जिसको नियमित रूप से शिक्षा दी जाती हो। फिर काम करते-करते अनुभव हो ही जाता है। मैनपुरी षड्यंत्र तथा इस षड्यंत्र से इसका पूरा पता लग गया, कि थोड़ी-सी कुशलता से कार्य करने पर पुलिस के लिए पता पाना बड़ा कठिन है। वास्तव में उनके कुछ भाग्य ही

अच्छे होते हैं। जब से इस मुकदमे की जाँच शुरू हुई, पुलिस ने इस प्रांत के संदिग्ध क्रांतिकारी व्यक्तियों पर दृष्टि डाली। उनसे मिली, बातचीत की। एक-दो को कुछ धमकी दी। "चोर की दाढ़ी में तिनका", वाली जनश्रुति (कहावत) के अनुसार एक महाशय से पुलिस को सारा भेद मालूम हो गया। हम सबके सब चक्कर में थे कि इतनी जल्दी पुलिस ने मामले का पता कैसे लगा लिया। उक्त महाशय की ओर तो ध्यान भी न जा सकता था। पर गिरफ्तारी के समय मुझसे तथा पुलिस के अफसर से जो बातें हुईं, उनमें पुलिस अफसर ने वे सब बातें मुझसे कहीं जिनको मेरे तथा उक्त महाशय के अतिरिक्त कोई भी दूसरा नहीं जान सकता था। और भी बड़े पक्के तथा बुद्धिगम्य (समझ में आने लायक) प्रमाण मिल गए कि जिन बातों को उक्त महाशय जान सके थे, वे ही पुलिस जान सकी। जो बातें आपको मालूम न थीं, वे पुलिस को किसी प्रकार न मालूम हो सकीं। उन बातों से यह निश्चय हो गया कि यह काम उन्हीं महाशय का है। यदि ये महाशय पुलिस के हाथ न आते और भेद न खोल देते तो पुलिस सिर पटक कर रह जाती, कुछ भी पता न चलता। बिना दृढ़ प्रमाणों के भयंकर-से-भयंकर व्यक्ति पर हाथ रखने का साहस नहीं होता, क्योंकि जनता में आंदोलन फैलने से बदनामी हो जाती है। सरकार पर जवाबदेही आती है। अधिक-से-अधिक दो-चार मनुष्य पकड़े जाते और अंत में उन्हें भी छोड़ना पड़ता। परन्तु जब पुलिस को वास्तविक सूत्र हाथ आ गया, उसने अपनी सत्यता को प्रमाणित करने के लिए लिखा हुआ प्रमाण पुलिस को दे दिया। उस अवस्था में यदि पुलिस गिरफ्तारियाँ न करती तो फिर कब करती ? जो भी हुआ, परमात्मा उनका भी भला करे। अपना तो जीवनभर यही उसूल रहा—

सताए तुझको जो कोई बेवफा[12] "बिस्मिल"।
तो मुँह से कुछ न कहना आह ! कर लेना।।
हम शहीदाने[13] वफा[14] का दीनो ईमां[15] और है।
सिजदे[16] करते हैं हमेशा पाँव पर जल्लाद[17] के।।

मैंने इस अभियोग में जो भाग लिया अथवा जिनकी जिंदगी की जिम्मेदारी मेरे सिर पर थी, उनमें से ज्यादा हिस्सा श्री अशफाकउल्ला खाँ वारसी का है। मैं

अपनी कलम से उनके लिए भी अंतिम समय में दो शब्द लिख देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

अशफाक उल्ला खाँ

मुझे भली-भाँति याद है कि जब मैं बादशाही एलान के बाद शाहजहाँपुर आया था, तो तुमसे स्कूल में भेंट हुई थी। तुम्हारी मुझसे मिलने की बड़ी हार्दिक इच्छा थी। तुमने मुझसे मैनपुरी षड्यंत्र के संबंध में कुछ बातचीत करनी चाही थी। मैंने यह समझकर कि एक स्कूल का मुसलमान विद्यार्थी मुझसे इस प्रकार की बातचीत क्यों करता है, तुम्हारी बातों का उत्तर उपेक्षा की दृष्टि से दे दिया था। तुम्हें उस समय बड़ा खेद हुआ था। तुम्हारे मुख से हार्दिक भावों का प्रकाश हो रहा था। तुमने अपने इरादे को यों ही नहीं छोड़ दिया, अपने निश्चय पर डटे रहे। जिस प्रकार हो सका कांग्रेस में बातचीत की। अपने इष्ट-मित्रों द्वारा इस बात का विश्वास दिलाने की कोशिश की कि तुम बनावटी आदमी नहीं, तुम्हारे दिल में मुल्क की खिदमत (देश की सेवा) करने की ख्वाहिश (इच्छा) थी। अंत में तुम्हारी विजय हुई। तुम्हारी कोशिशों ने मेरे दिल में जगह पैदा कर ली। तुम्हारे बड़े भाई मेरे उर्दू मिडिल के सहपाठी तथा मित्र थे, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। थोड़े दिनों में ही तुम मेरे छोटे भाई के समान हो गए थे, किन्तु छोटे भाई बनकर तुम्हें संतोष न हुआ। तुम समानता का अधिकार चाहते थे। तुम

मित्र की श्रेणी में अपनी गणना चाहते थे। वही हुआ। तुम सच्चे मित्र बन गए। सबको आश्चर्य था कि एक कट्टर आर्य समाजी और मुसलमान का मेल कैसा ? मैं मुसलमानों की शुद्धि करता था। आर्य समाज मंदिर में मेरा निवास था, किंतु तुम इन बातों की थोड़ी भी चिंता न करते थे। मेरे कुछ साथी तुम्हें मुसलमान होने के कारण घृणा की दृष्टि से देखते थे, किंतु तुम अपने निश्चय में दृढ़ थे। मेरे पास आर्य समाज मंदिर में आते-जाते थे। हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा होने पर, तुम्हारे मुहल्ले के सब कोई तुम्हें खुल्लमखुल्ला गालियाँ देते थे, काफिर के नाम से पुकारते थे, पर तुम कभी भी उनके विचारों से सहमत न हुए। सदैव हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के पक्षपाती रहे। तुम एक सच्चे मुसलमान तथा सच्चे स्वदेश-भक्त थे। तुम्हें यदि जीवन में कोई विचार था, तो यही कि मुसलमानों को खुदा अक्ल देता, कि वे हिन्दुओं के साथ मिलकर हिन्दुस्तान की भलाई करते। जब मैं हिन्दी में कोई लेख या पुस्तक लिखता तो तुम सदैव यही अनुरोध करते कि उर्दू में क्यों नहीं लिखते, जो मुसलमान भी पढ़ सकें ? तुमने स्वदेशभक्ति के भावों को भली-भाँति समझने के लिए ही हिन्दी का अच्छा अध्ययन किया। अपने घर पर जब माताजी तथा भ्राताजी से बातचीत करते थे, तो तुम्हारे मुँह से हिन्दी शब्द निकलते थे, जिससे सबको बड़ा आश्चर्य होता था।

तुम्हारी इस प्रकार की प्रवृत्ति को देखकर बहुतों को संदेह होता था कि कहीं इस्लाम-धर्म त्याग कर शुद्धि न करा लो। पर तुम्हारा हृदय तो किसी प्रकार अशुद्ध न था, फिर तुम शुद्धि किस वस्तु की कराते ? तुम्हारी इस प्रकार की प्रगति ने मेरे हृदय पर पूर्ण विजय पा ली। प्रायः मित्र मंडली में बात छिड़ती कि कहीं मुसलमान पर विश्वास करके धोखा न खाना। तुम्हारी जीत हुई, मुझमें तुममें भेद न था। प्रायः मैंने तुमने एक थाली में भोजन किए। मेरे हृदय से वह विचार ही जाता रहा कि हिन्दू-मुसलमान में कोई भेद है। तुम मुझ पर अटल विश्वास तथा अगाध प्रीति रखते थे। हाँ ! तुम मेरा नाम लेकर पुकार नहीं सकते थे। तुम तो सदैव "राम" कहा करते थे। एक समय जब तुम्हारे हृदय-कंप का दौरा

हुआ, तुम अचेत थे, तुम्हारे मुँह से बारंबार "राम", "हाय राम" शब्द निकल रहे थे। पास खड़े हुए भाई-बांधवों को आश्चर्य था कि "राम", "राम" कहता है। कहते कि अल्लाह अल्लाह कहो, पर तुम्हारी "राम-राम" की रट थी। उसी समय किसी मित्र का आगमन हुआ, जो "राम" के भेद को जानते थे। तुरंत मैं बुलाया गया। मुझसे मिलने पर तुम्हें शांति हुई, तब सब लोग "राम-राम" के भेद को समझे।

अंत में इस प्रेम, प्रीति तथा मित्रता का परिणाम क्या हुआ ? मेरे विचारों के रंग में तुम भी रँग गए। तुम भी कट्टर क्रांतिकारी बन गए। अब तो तुम्हारा दिन-रात प्रयत्न यही था कि किस प्रकार ही मुसलमान नवयुवकों में भी क्रांतिकारी भावों का प्रवेश हो। वे भी क्रांतिकारी आंदोलन में योगदान दें। जितने तुम्हारे बंधु तथा मित्र थे सब पर तुमने अपने विचारों का प्रभाव डालने का प्रयत्न किया। प्रायः क्रांतिकारी सदस्यों को भी बड़ा आश्चर्य होता है कि मैंने कैसे एक मुसलमान को क्रांतिकारी दल का प्रतिष्ठित सदस्य बना लिया। मेरे साथ तुमने जो कार्य किए, वे सराहनीय हैं। तुमने कभी भी मेरी आज्ञा की अवहेलना (अनादर) न की। एक आज्ञाकारी भक्त के समान मेरी आज्ञा के पालन में तत्पर रहते थे। तुम्हारा हृदय बड़ा विशाल था। तुम्हारे भाव बड़े उच्च थे।

मुझे यदि शांति है तो यही कि तुमने संसार में मेरा मुख उज्ज्वल कर दिया। भारत के इतिहास में यह घटना भी उल्लेखनीय हो गई कि अशफाकउल्ला ने क्रांतिकारी आंदोलन में योग दिया। अपने भाई-बंधु तथा संबंधियों के समझाने पर कुछ भी ध्यान न दिया। गिरफ्तार हो जाने पर भी अपने विचारों में दृढ़ रहे जैसे तुम शारीरिक बलशाली थे, वैसे ही मानसिक वीर तथा आत्मा से उच्च सिद्ध हुए। इन सबके परिणामस्वरूप अदालत में तुमको मेरा सहकारी (लेफ्टिनेंट) ठहराया गया, और जज ने मुकदमे का फैसला लिखते समय तुम्हारे गले में जयमाला (फाँसी की रस्सी) पहना दी। प्यारे भाई, तुम्हें यह समझकर संतोष होगा कि जिसने अपने माता-पिता की धन-संपत्ति को देश-सेवा में अर्पण करके उन्हें

भिखारी बना दिया, जिसने अपना तन-मन-धन सर्वस्व मातृ-सेवा में अर्पण करके अपना अंतिम बलिदान भी दे दिया, उसने अपने प्रिय सखा अशफाक को भी उसी मातृभूमि की भेंट चढ़ा दिया।

> "असगर"[18] हरीम[19] इश्क[20] में हस्ती[21] ही जुर्म[22] है।
> रखना कभी न पाँव यहाँ सर लिए हुए।।

फांसी की कोठरी

अंतिम समय निकट है। दो फाँसी की सज़ाएँ सिर पर झूल रही हैं। पुलिस को साधारण जीवन में और समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओं में खूब जी-भर के कोसा है। खुली अदालत में जज साहब, खुफिया पुलिस के अफसर, मजिस्ट्रेट, सरकारी वकील तथा सरकार को खूब आड़े हाथों लिया है। हरेक के दिल में मेरी बातें चुभ रही हैं। कोई दोस्त आशना, अथवा यार मददगार नहीं, जिसका सहारा हो। एक परम पिता परमात्मा की याद है। गीता पाठ करते हुए संतोष है कि–

> जो कुछ किया सो तैं किया, मैं कुछ कीन्हा नाहिं।
> जहाँ कहीं कुछ मैं किया, तुम ही थे मुझ माहिं।।
> ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः।
> लिप्यते न स पापेभ्यो: पद्मपत्रमिवाम्भसः।।

—भगवद्‌गीता/5/10

"जो फल की इच्छा को त्याग करके कर्मों को ब्रह्म में अर्पण करके कर्म करता है, वह पाप से लिप्त नहीं होता। जिस प्रकार जल में रहकर भी कमल-पत्र जल में नहीं होता।" जीवनपर्यन्त जो कुछ किया, स्वदेश की भलाई समझकर किया। यदि शरीर की पालना की तो इसी विचार से कि सुदृढ़ शरीर से भली प्रकार स्वदेशी सेवा हो सके। बड़े प्रयत्नों से यह शुभ दिन प्राप्त हुआ। संयुक्त प्रांत में इस तुच्छ शरीर का ही सौभाग्य होगा जो सन् 1857 ई. के गदर की घटनाओं के पश्चात् क्रांतिकारी आंदोलन के संबंध में इस प्रांत के निवासी का पहला बलिदान मातृ-वेदी पर होगा।

सरकार की इच्छा है कि मुझे घोट-घोटकर मारे। इसी कारण इस गर्मी की ऋतु में साढ़े तीन महीने बाद अपील की तारीख नियत की गई। साढ़े तीन महीने तक फाँसी की कोठरी में भेजा गया। यह कोठरी पक्षी के पिंजरे से भी खराब है। गोरखपुर जेल की फाँसी की कोठरी मैदान में बनी है। किसी प्रकार की छाया निकट नहीं। प्रातःकाल आठ बजे से रात्रि के आठ बजे तक सूर्य देवता की कृपा से तथा चारों ओर रेतीली जमीन होने से अग्नि वर्षण होता रहता है। नौ फीट लंबी तथा नौ फीट चौड़ी कोठरी में केवल छः फीट लंबा और दो फीट चौड़ा द्वार है। पीछे की ओर जमीन से आठ या नौ फीट की ऊँचाई पर एक-दो फीट लंबी, एक फुट चौड़ी खिड़की है। इसी कोठरी में भोजन, स्नान, मल-मूत्र त्याग शयनादि होता है। मच्छर अपनी मधुर ध्वनि रातभर सुनाया करते हैं। बड़े प्रयत्न से रात्रि में तीन या चार घंटे निद्रा आती है, किसी-किसी दिन एक-दो घंटे ही सोकर निर्वाह करना पड़ता है। मिट्टी के पात्रों में भोजन दिया जाता है। ओढ़ने-बिछाने के दो कंबल मिले हैं। बड़े त्याग का जीवन है। साधना के सब साधन एकत्रित हैं। प्रत्येक क्षण शिक्षा दे रहा है— अंतिम समय के लिए तैयार हो जाओ, परमात्मा का भजन करो।

मुझे तो इस कोठरी में बड़ा आनन्द आ रहा है। मेरी इच्छा थी कि किसी साधु की गुफा पर कुछ दिन निवास करके योगाभ्यास किया जाता । अंतिम समय वह इच्छा भी पूर्ण हो गई। साधु की गुफा न मिली तो क्या, साधना की गुफा तो मिल गई। इसी कोठरी में यह सुयोग प्राप्त हो गया कि अपनी कुछ अंतिम बात लिखकर देशवासियों को अर्पण कर दूँ। सम्भव है कि मेरे जीवन के अध्ययन से किसी आत्मा का भला हो जाए। बड़ी कठिनाई से यह शुभ अवसर प्राप्त हुआ।

महसूस[23] हो रहे हैं बादे[24] फ़ना[25] के झोंके।
खुलने लगे हैं मुझ पर असरार[26] जिंदगी के।।
बारे[27] अलम[28] उठाया रंगे निशात[29] देखा।
आए नहीं हैं यूँ ही अंदाज[30] बेहिसी[31] के।।

वफ़ा[32] पर दिल को सदके[33] जान को नजरे जफ़ा[34] कर दे।
मुहब्बत में यह लाजिम[35] है कि जो कुछ हो फ़िदा[36] कर दे।।

अब तो यही इच्छा है कि–

बहे बहरे[37] फ़ना[38] में जल्द या रब[39] लाश "बिस्मिल"[40] की।
कि भूखी मछलियाँ हैं जौहरे शमशीर[41] कातिल[42] की।।
समझकर फूँकना इसको ज़रा ऐ दागे नाकामी[43]।
बहुत से घर भी हैं आबाद इस उजड़े हुए दिल से।।

परिणाम

ग्यारह वर्ष पर्यंत यथाशक्ति प्राणपण से चेष्टा करने पर भी हम अपने उद्देश्य में कहाँ तक सफल हुए ? क्या लाभ हुआ ? इसका विचार करने से कुछ अधिक प्रयोजन सिद्ध न होगा, क्योंकि हमने लाभ-हानि अथवा जय-पराजय के विचार से क्रांतिकारी दल में योग नहीं दिया था। हमने जो कुछ किया वह अपना कर्त्तव्य समझकर किया। कर्त्तव्य-निर्णय में हमने कहाँ तक बुद्धिमत्ता से काम लिया, इसका विवेचन करना उचित जान पड़ता है। राजनैतिक दृष्टि से हमारे कार्यों का इतना ही मूल्य है कि कतिपय होनहार नवयुवकों के जीवन को कष्टमय बनाकर नीरस कर दिया, और उन्हीं में से कुछ ने व्यर्थ में जान गँवाई। कुछ धन भी खर्च किया। हिन्दू-शास्त्र के अनुसार किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती, जिसका जिस विधि से जो काल होता है, वह उसी विधि से समय पर ही प्राण त्याग करता है। केवल निमित्त-मात्र कारण उपस्थित हो जाते हैं। लाखों भारतवासी महामारी, हैज़ा, ताऊन आदि अनेक प्रकार के रोगों से मर जाते हैं। करोड़ों दुर्भिक्ष में अन्न बिना प्राण त्यागते हैं, तो उसका उत्तरदायित्व किस पर है ? रह गया धन का व्यय, सो इतना धन तो भले आदमियों के विवाहोत्सवों में व्यय हो जाता है। गण्यमान व्यक्तियों की तो केवल विलासिता की सामग्री का मासिक व्यय इतना होगा, जितना कि हमने एक षड्यंत्र के निर्माण में व्यय किया। हम लोगों

को डाकू बताकर फाँसी और काले पानी की सज़ाएँ दी गई हैं। किन्तु हम समझते हैं कि वकील और डाक्टर हमसे कहीं बड़े डाकू हैं। वकील-डॉक्टर दिन दहाड़े बड़े-वड़े ताल्लुकेदारों की जायदादें लूटकर खा गए। वकीलों के चाटे हुए अवध के ताल्लुकेदारों को ढूँढे रास्ता भी दिखाई नहीं देता और वकीलों की ऊँची अट्टालिकाएँ (भवन) उन पर खिलखिला कर हँस रही हैं। इसी प्रकार लखनऊ में डॉक्टरों के भी ऊँचे-ऊँचे महल बन गए। किंतु राज्य में दिन के डाकुओं की प्रतिष्ठा है। अन्यथा रात के साधारण डाकुओं और दिन के इन डाकुओं (वकीलों तथा डॉक्टरों) में कोई भेद नहीं, दोनों अपने-अपने मतलब के लिए बुद्धि की कुशलता से प्रजा का धन लूटते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से हम लोगों के कार्य का बहुत बड़ा मूल्य है। जिस प्रकार भी हो, यह तो मानना ही पड़ेगा कि गिरी हुई अवस्था (दशा) में भी, भारतवासी युवकों के हृदय में स्वाधीन होने के भाव विराजमान हैं। वे स्वतंत्र होने की यथाशक्ति चेष्टा भी करते हैं। यदि परिस्थितियाँ अनुकूल होतीं तो यही इने-गिने नवयुवक अपने प्रयत्नों से संसार को चकित कर देते। उस समय भारतवासियों को भी फ्रांसीसियों की भाँति कहने का सौभाग्य प्राप्त होता जोकि उस जाति के नवयुवकों ने फ्रांसीसी प्रजातंत्र की स्थापना करते हुए कहा था: The monument so raised, may serve as a lesson to the oppressors and an instance to the oppressed.

अर्थात स्वाधीनता का जो स्मारक निर्माण किया गया है वह अत्याचारियों के लिए सबक का कार्य करे और अत्याचार-पीड़ितों के लिए उदाहरण बने।

भारत के इतिहास में हमारे प्रयत्नों का उल्लेख करना ही पड़ेगा, किन्तु इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि भारत की राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक किसी प्रकार की परिस्थिति इस क्रांतिकारी आंदोलन के पक्ष में नहीं है। इसका कारण यही है कि भारतवासियों में शिक्षा का अभाव है। वे साधारण से साधारण सामाजिक उन्नति करने में भी असमर्थ हैं। फिर राजनैतिक क्रांति की वात कौन कहे? राजनैतिक क्रांति

के लिए सर्वप्रथम क्रांतिकारियों का संगठन ऐसा होना चाहिए कि अनेक विघ्न तथा बाधाओं के उपस्थित होने पर भी संगठन में किसी प्रकार की त्रुटि न आए। सब कार्य यथावत चलते रहें। कार्यकर्त्ता इतने योग्य तथा पर्याप्त संख्या में होने चाहिए कि एक की अनुपस्थिति में दूसरा स्थान-पूर्ति के लिए सदा उद्यत रहे। भारत में कई बार कितने ही षड्यंत्रों का भंडा फूट गया और सब किया कराया काम चौपट हो गया। जब क्रांतिकारी दलों की यह अवस्था है तो फिर क्रांति के लिए उद्योग कौन करे? देशवासी इतने शिक्षित हों कि वे वर्तमान सरकार की नीति को समझकर अपने हानि-लाभ को जानने में समर्थ हो सकें। वे यह भी पूर्णतया समझते हों कि वर्तमान सरकार को हटाना आवश्यक है या नहीं। साथ-ही-साथ उनमें इतनी बुद्धि भी होनी चाहिए कि किस रीति से सरकार को हटाया जा सकता है। क्रांतिकारी दल क्या है? वह क्या करना चाहता है? क्यों करना चाहता है? इन सारी बातों को जनता की अधिक संख्या समझ सके, क्रांतिकारियों के साथ जनता की पूर्ण सहानुभूति हो, तब कहीं क्रांतिकारी दल को देश में पैर रखने का स्थान मिल सकता है। यह तो क्रांतिकारी दल की स्थापना की प्रारंभिक बातें हैं। रह गई क्रांति, सो वह तो बहुत दूर की बात है।

क्रांति का नाम ही बड़ा भयंकर है। प्रत्येक प्रकार की क्रांति विपक्षियों को भयभीत कर देती है। जहाँ पर रात्रि होती है तो दिन का आगमन जान निशिचरों को दुख होता है। ठंडे जलवायु में रहने वाले पशु-पक्षी गर्मी के आने पर उस देश को भी त्याग देते हैं। फिर राजनैतिक क्रांति तो बड़ी भयावनी होती है। मनुष्य अभ्यासों का समूह है। अभ्यासों के अनुसार ही उसकी प्रकृति बन जाती है। उसके विपरीत जिस समय कोई बाधा उपस्थित होती है, तो उनको भय प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सरकार के सहायक अमीर और जमींदार होते हैं ये लोग कभी नहीं चाहते कि उनके ऐशो-आराम में किसी प्रकार की बाधा पड़े। इसलिए वे हमेशा क्रांतिकारी आंदोलन को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। यदि किसी प्रकार दूसरे देशों की सहायता लेकर, समय पाकर क्रांतिकारी दल

क्रांति के उद्योग में सफल हो जाए, देश में क्रांति हो जाए तो भी योग्य नेता न होने से अराजकता फैलकर व्यर्थ की नरहत्या होती है, और उस प्रयत्न में अनेक सुयोग्य वीरों तथा विद्वानों का नाश हो जाता है।

इसका ज्वलंत उदाहरण सन् 1857 ई. का गदर है। यदि फ्रांस तथा अमरीका की भाँति क्रांति द्वारा राजतंत्र को पलटकर प्रजातंत्र स्थापित भी कर लिया जाए तो बड़े-बड़े धनी पुरुष अपने धन, बल से सब प्रकार के अधिकारों को दबा बैठते हैं। कार्यकारिणी समितियों में बड़े-बड़े अधिकार धनियों को होते हैं। देश के शासन में धनियों का मत ही उच्च आदर पाता है। धन-बल से देश के समाचार-पत्रों, कल-कारखानों तथा खानों पर उनका ही अधिकार हो जाता है। मजबूरन जनता की अधिक संख्या धनिकों का समर्थन करने को बाध्य हो जाती है। जो दिमाग वाले होते हैं, वे भी समय पाकर बुद्धिबल से जनता की खरी कमाई से प्राप्त किए अधिकारों को हड़प कर बैठते हैं। स्वार्थ के वशीभूत होकर वे श्रमजीवियों तथा कृषकों को उन्नति का अवसर नहीं देते। अंत में ये लोग भी धनिकों के पक्षपाती होकर राजतंत्र के स्थान में धनिकतंत्र की ही स्थापना करते है। रूसी क्रांति के पश्चात यही हुआ था। रूस के क्रांतिकारी इस बात को पहले से ही जानते थे। अतएव उन्होंने राज्य-सत्ता के विरुद्ध युद्ध करके राजतंत्र की समाप्ति की। इसके बाद जैसे ही धनी तथा बुद्धिजीवियों ने रोड़ा अटकाना चाहा कि उसी समय उनसे भी युद्ध करके उन्होंने वास्तविक प्रजातंत्र की स्थापना की।

अब विचारने की बात यह है कि भारत में क्रांतिकारी आंदोलन के समर्थक कौन-कौन से साधन मौजूद हैं? पूर्व पृष्ठों में मैंने अपने अनुभवों का उल्लेख करके दिखला दिया है कि समिति के सदस्यों की उदर-पूर्ति तक के लिए कितना कष्ट उठाना पड़ा। प्राणार्पण से चेष्टा करने पर भी असहयोग आंदोलन के पश्चात कुछ थोड़े-से ही गिने-चुने युवक युक्त प्रांत में ऐसे मिल सके, जो क्रांतिकारी आंदोलन का समर्थन करके सहायता देने को उद्यत हुए। इन गिने-चुने

व्यक्तियों में भी हार्दिक सहानुभूति रखने वाले, अपनी जान पर खेल जाने वाले, कितने थे, उसका कहना ही क्या है। कैसी बड़ी-बड़ी आशाएँ बँधाकर इन व्यक्तियों को क्रांतिकारी समिति का सदस्य बनाया गया था, और इस अवस्था में, जबकि असहयोगियों ने सरकार की ओर से घृणा उत्पन्न कराने में कोई कसर न छोड़ी थी, खुले रूप में राज्यद्रोही बातों का पूर्ण प्रचार किया था। इस पर भी बोलशेविक सहायता की आशाएँ बँधा-बँधा कर तथा क्रांतिकारियों के ऊँचे-ऊँचे आदर्शों तथा बलिदानों का उदाहरण दे-देकर प्रोत्साहन दिया जाता था। नवयुवकों के हृदय में क्रांतिकारियों के प्रति बड़ा प्रेम तथा श्रद्धा होती है। उनकी अस्त्र-शस्त्र रखने की स्वाभाविक इच्छा तथा रिवाल्वर या पिस्तौल से प्राकृतिक प्रेम उन्हें क्रांतिकारी दल से सहानुभूति उत्पन्न कर देता है।

मैंने अपने क्रांतिकारी जीवन में एक भी युवक ऐसा न देखा, जो एक रिवाल्वर या पिस्तौल अपने पास रखने की इच्छा न रखता हो। जिस समय उन्हें रिवाल्वर के दर्शन होते हैं, वे समझते हैं कि इष्ट देव के दर्शन प्राप्त हुए, आधा जीवन सफल हो गया। उसी समय से वे समझते हैं कि क्रांतिकारी दल के पास इस प्रकार के सहस्त्रों अस्त्र होंगे, तभी तो इतनी बड़ी सरकार से युद्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं। सोचते हैं कि धन की भी कोई कमी न होगी। अब क्या, अब समिति के व्यय से देश-भ्रमण का अवसर भी प्राप्त होगा, बड़े-बड़े त्यागी महात्माओं के दर्शन होंगे, सरकारी गुप्तचर विभाग का भी हाल मालूम हो सकेगा, सरकार द्वारा जब्त किताबें कुछ तो पहले ही पढ़ा दी जाती हैं, रही-सही की भी आशा रहती है कि बड़ा उच्च साहित्य देखने को मिलेगा, जो यों कभी प्राप्त नहीं हो सकता। साथ-ही-साथ ख्याल होता है कि क्रांतिकारियों ने देश के राजा-महाराजाओं को तो अपने पक्ष में कर ही लिया होगा। अब क्या, थोड़े दिन की ही कसर है, लौट दिया सरकार का राज्य। बम बनाना सीख ही जाएँगे। अमर बूटी प्राप्त हो जाएगी, आदि। परंतु जैसे ही एक युवक क्रांतिकारी दल का सदस्य बनकर हार्दिक प्रेम से समिति के कार्यों में योग देता है, थोड़े दिनों में ही उसे विशेष

सदस्य होने के अधिकार प्राप्त होते हैं, वह एक्टिव (कार्यशील) मेम्वर बनता है, उसे संस्था का कुछ असली भेद मालूम होता है, तब समझ में आता है कि कैसे भीषण कार्य में उसने हाथ डाला है। फिर तो वही दशा हो जाती है, जो "नकटा पंथ" के सदस्यों की थी।

जब चारों ओर से असफलता तथा अविश्वास की घटाएँ दिखाई देती हैं, तब यही विचार होता है कि ऐसे दुर्गम पथ में ये परिणाम तो होते ही हैं। दूसरे देश के क्रांतिकारियों के मार्ग में भी ऐसी ही बाधाएँ उपस्थित हुई होंगी। वीर वही कहलाता है जो अपने लक्ष्य को नहीं छोड़ता, इसी प्रकार की बातों से मन को शांत किया जाता है। भारत के जनसाधारण की तो कोई बात ही नहीं। अधिकांश शिक्षित समुदाय भी यह नहीं जानता कि क्रांतिकारी दल क्या चीज है, फिर उनसे सहानुभूति कौन रखे ? बिना देशवासियों की सहानुभूति के अथवा बिना जनता की आवाज के सरकार भी किसी बात की कुछ चिंता नहीं करती। दो-चार पढ़े-लिखे एक-दो अंग्रेजी अखबार में दबे हुए शब्दों में यदि दो-एक लेख लिख दें, तो वे अरण्यरोदन के समान निष्फल सिद्ध होते हैं। उनकी ध्वनि व्यर्थ में ही आकाश में विलीन हो जाती है। तमाम बातों को देखकर अब तो मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि अच्छा हुआ जो मैं गिरफ्तार हो गया और भोग नहीं भोगने की मुझे सुविधाएँ थीं। गिरफ्तारी से पहले ही मुझे अपनी गिरफ्तारी का पूरा पता चल गया था। गिरफ्तारी के पूर्व भी यदि इच्छा करती तो पुलिस वालों को मेरी हवा भी न मिलती, किन्तु मुझे तो अपनी शक्ति की परीक्षा करनी थी। गिरफ्तारी के बाद सड़क पर आधे घंटे तक बिना किसी बंधन के घूमता रहा। पुलिस वाले शांतिपूर्वक बैठे हुए थे। जब पुलिस कोतवाली में पहुँचा, दोपहर के समय पुलिस कोतवाली के दफ्तर में बिना किसी बंधन के खुला बैठा हुआ था। केवल एक सिपाही निगरानी के लिए पास बैठा हुआ था, जो रातभर का जागा था। सब पुलिस अफसर भी रातभर के जगे हुए थे, क्योंकि गिरफ्तारियों में लगे रहे थे। सब आराम करने चले गए थे। निगरानी वाला सिपाही भी घोर निद्रा में

सो गया। दफ्तर में केवल एक मुंशी लिखा-पढ़ी कर रहे थे। वह भी श्री रोशनसिंह अभियुक्त के फूफीजात भाई थे। यदि मैं चाहता तो धीरे से उठकर चल देता। पर मैंने विचारा कि मुंशी जी महाशय बुरे फँसेंगे। मैंने मुंशी जी को बुलाकर कहा यदि भावी आपत्ति के लिए तैयार हो तो मैं जाऊँ। वे मुझे पहले से जानते थे। पैरों पड़ गए कि गिरफ्तार हो जाऊँगा, बाल-बच्चे भूखों मर जाएँगे। मुझे दया आ गई। एक घंटे बाद श्री अशफाकउल्ला खाँ के मकान की तलाशी लेकर पुलिस वाले लौटे। श्री अशफाकउल्ला खाँ के भाई की कारतूसी बंदूक और कारतूसों की भरी हुई पेटी लाकर उन्हीं मुंशी जी के पास रख दी गई, और मैं पास ही कुर्सी पर खुला हुआ बैठा था। केवल एक सिपाही खाली हाथ पास में खड़ा था। इच्छा हुई कि बंदूक उठाकर कारतूसों की पेटी गले में डाल लूँ, फिर कौन सामने आता है। पर फिर सोचा कि मुंशी जी पर आपत्ति आएगी, विश्वासघात करना ठीक नहीं। उस समय खुफिया पुलिस के डिप्टी सुपरिण्टेंडेंट सामने छत पर आए। उन्होंने देखा कि मेरे एक ओर कारतूस तथा बंदूक पड़ी है,दूसरी ओर श्री प्रेमकृष्ण का माउजर पिस्तौल तथा कारतूस रखे हैं, क्योंकि सब चीजें मुंशी जी के पास आकर जमा होती थीं और मैं बिना किसी बंधन के बीच में खुला हुआ बैठा हूँ। डि.सु. को तुरंत संदेह हुआ, उन्होंने बंदूक तथा पिस्तौल को वहाँ से हटवाकर मालखाने में बंद करवाया। निश्चय किया कि अब भाग चलूँ। पाखाने के बहाने से बाहर निकाला गया। एक सिपाही कोतवाली से बाहर दूसरे स्थान में शौच के निमित्त लिवा गया। दूसरे सिपाहियों ने उससे बहुत कुछ कहा कि रस्सी डाल लो। उसने कहा मुझे विश्वास है यह भागेंगे नहीं। पाखाना नितांत निर्जन स्थान में था। मुझे पाखाने भेजकर वह सिपाही खड़ा होकर सामने कुश्ती देखने लगा। मैंने दीवार पर पैर रखा और चढ़कर देखा कि सिपाही महोदय कुश्ती देखने में मस्त हैं। हाथ बढ़ाते ही दीवार के ऊपर और एक क्षण में बाहर हो जाता, फिर मुझे कौन पाता? किन्तु तुरंत विचार आया कि जिस सिपाही ने विश्वास करके तुम्हें इतनी स्वतंत्रता दी, उसके साथ विश्वासघात करके भागकर उसको जेल में डालोगे? क्या

यह अच्छा होगा? उसके बाल-बच्चे क्या कहेंगे? इस भाव ने हृदय पर एक ठोकर लगाई। एक ठंडी साँस भरी, दीवार से उतर कर बाहर आया, सिपाही महोदय को साथ लेकर कोतवाली की हवालात में आकर बंद हो गया।

लखनऊ जेल में काकोरी के अभियुक्तों को बड़ी आज़ादी थी। राय साहब पं. चंपालाल जेलर की कृपा से हम कभी न समझ सके कि जेल में हैं या किसी रिश्तेदार के यहाँ मेहमानी कर रहे हैं। जैसे माता-पिता से छोटे-छोटे लड़के बात-बात पर ऐंठ जाते। पं. चंपालालजी का ऐसा हृदय था कि वे हम लोगों से अपनी संतान से भी अधिक प्रेम करते थे। हममें से किसी को जरा-सा कष्ट होता था, तो उन्हें बड़ा दुःख होता था। हमारे तनिक-से कष्ट को भी वह स्वयं न देख सकते थे। और हम लोग ही क्यों, उनके जेल में किसी कैदी या सिपाही, जमादार या मुंशी—किसी को भी कोई कष्ट नहीं। सब बड़े प्रसन्न रहते थे। इसके अतिरिक्त मेरी दिनचर्या तथा नियमों का पालन देखकर पहरे के सिपाही अपने गुरू से भी अधिक मेरा सम्मान करते थे। मैं यथानियम जाड़े, गर्मी तथा बरसात में प्रातः काल तीन बजे से उठकर संध्यादि से निवृत्त हो नित्य हवन भी करता था। यदि किसी के बाल-बच्चे को कष्ट होता था, तो वह हवन की भभूत ले जाता था। कोई जंत्र माँगता था। उनके विश्वास के कारण उन्हें आराम भी होता था तथा उनकी श्रद्धा और भी बढ़ जाती थी। परिणामस्वरूप जेल से निकल जाने का पूरा प्रबंध कर लिया। जिस समय चाहता चुपचाप निकल जाता। एक रात्रि को तैयार होकर उठ खड़ा हुआ। बैरक के नंबरदार तो मेरे सहारे पहरा देते थे जब जी में आता सोते, जब इच्छा होती बैठ जाते, क्योंकि वे जानते थे कि यदि सिपाही या जमादार सुपरिंटेंडेंट जेल के सामने पेश करना चाहेंगे, तो मैं बचा लूँगा। सिपाही तो कोई चिंता ही न करते थे। चारों ओर शांति थी। केवल इतना प्रयत्न करना था कि लोहे की कटी हुई सलाखों को उठाकर बाहर हो जाऊँ। चार महीने पहले से लोहे की सलाखें काट ली थीं। काटकर वे ऐसे ढंग से जमा दी थीं कि सलाखें धोई गईं, रंगत लगवाई गईं, तीसरे दिन झाड़ी जातीं, आठवें दिन

हथौड़े से ठोंकीं जातीं और जेल के अधिकारी नित्य प्रति सायंकाल घूमकर सब ओर दृष्टि डाल जाते थे, पर किसी को कोई पता न चला। जैसे ही मैं जेल से भागने का विचार करके उठा था, ध्यान आया कि जिन पं. चंपालाल की कृपा से सब प्रकार के आनंद भोगने की स्वतंत्रता जेल में प्राप्त हुई उनके बुढ़ापे में जबकि थोड़ा-सा समय ही उनकी पेंशन के लिए बाकी है, क्या उन्हीं के साथ विश्वासघात करके निकल भागूँ? सोचा जीवन-भर किसी के साथ विश्वासघात न किया। अब भी विश्वासघात न करूँगा। उस समय मुझे यह भली भाँति मालूम हो चुका था कि मुझे फाँसी की सज़ा होगी, पर उपरोक्त बात सोचकर भागना स्थगित ही कर दिया। ये सब बातें चाहे प्रलाप ही क्यों न मालूम हों, किंतु सब अक्षरशः सत्य हैं, सबके प्रमाण विद्यमान हैं।

मैं इस समय इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि यदि हम लोगों ने प्राणपण (पूरी कोशिश से) से जनता को शिक्षित बनाने में पूर्ण प्रयत्न किया होता, तो हमारा उद्योग क्रांतिकारी आंदोलन से कहीं अधिक लाभदायक होता, जिसका परिणाम स्थायी होता। अति उत्तम होगा यदि भारत की भावी संतान तथा नवयुवकवृन्द क्रांतिकारी संगठन करने की अपेक्षा जनता की प्रवृत्ति को देश-सेवा की ओर लगाने का प्रयत्न करें और श्रमजीवी तथा कृषकों का संगठन करके उनको जमींदारों तथा रईसों के अत्याचारों से बचाएँ। भारतवर्ष के रईस तथा जमींदार सरकार के पक्षपाती हैं। मध्य श्रेणी के लोग किसी-न-किसी प्रकार इन्हीं तीनों के आश्रित हैं। कोई तो नौकरीपेशा हैं और जो कोई व्यवसाय भी करते हैं, उन्हें भी इन्हीं का मुँह ताकना पड़ता है। रह गए श्रमजीवी तथा कृषक सो उनको उदर-पूर्ति (पेट पालने) के कार्य से ही समय नहीं मिलता, जो धर्म, समाज तथा राजनीति की ओर कुछ ध्यान दे सकें। मद्यपानादि दुर्व्यसनों के कारण उनका आचरण भी ठीक नहीं रह सकता। व्यभिचार, संतान-वृद्धि, अल्पायु में मृत्यु तथा अनेक प्रकार के रोगों से जीवनभर उनकी मुक्ति नहीं हो सकती। कृषकों में उद्योग का तो नाम भी नहीं पाया जाता। यदि एक किसान को जमींदार की

मजदूरी करने या हल चलाने की नौकरी पर गाँव में आज से बीस वर्ष पूर्व दो आने रोज या चार रूपये मासिक मिलते थे, तो आज भी वही वेतन बँधा चला आ रहा है। बीस वर्ष पूर्व वह अकेला था, अब उसकी स्त्री तथा चार संतान भी हैं। पर उसी वेतन में उसे निर्वाह करना पड़ता है। उसे उसी पर संतोष करना पड़ता है। सारे दिन जेठ की लू तथा धूप में गन्ने के खेत में पानी देते-देते उसको रतौंधी आने लगती है। अँधेरा होते ही आँख से दिखाई नहीं देता, पर उसके बदले में आधा सेर सड़े हुए शीरे का शरबत या आधा सेर चना तथा छः पैसे रोज मजदूरी मिलती है, जिसमें ही उसे अपने परिवार का पेट पालना पड़ता है।

जिसके हृदय में भारत की सेवा के भाव हों, या जो भारतभूमि को स्वतंत्र देखने या स्वाधीन बनाने की इच्छा रखता हो, उसे उचित है कि ग्रामीण संगठन करके कृषकों की दशा सुधारकर, उनके हृदय से भाग्य-निर्भरता को हटाकर उद्योगी बनने की शिक्षा दें। कल-कारखाने, रेलवे, जहाज तथा खानों में जहाँ कहीं श्रमजीवी हों, उनकी दशा को सुधारने के लिए श्रमजीवियों के संघ की स्थापना की जाए, ताकि उनको अपनी अवस्था का ज्ञान हो सके और कारखानों के मालिक मनमाने अत्याचार न कर सकें और अछूतों को, जिनकी संख्या इस देश में लगभग छः करोड़ है, पर्याप्त शिक्षा प्राप्त कराने का प्रबंध हो तथा उनको सामाजिक अधिकारों में समानता मिले। जिस देश में छः करोड़ मनुष्य अछूत समझे जाते हों, उस देश के वासियों को स्वाधीन बनने का अधिकार ही क्या है? इसी के साथ ही साथ स्त्रियों की दशा भी सुधारी जाए कि वे अपने आपको मनुष्य जाति का अंग समझने लगें। वे पैर की जूती तथा घर की गुड़िया न समझी जाएँ। इतने कार्य हो जाने के बाद जब भारत की जनता का अधिकांश शिक्षित हो जाएगा, वे अपनी भलाई-बुराई समझने के योग्य हो जाएँगे, उस समय प्रत्येक आंदोलन जिसका शिक्षित जनता समर्थन करेगी, अवश्य सफल होगा। संसार की बड़ी-से-बड़ी शक्ति भी उसको दबाने में समर्थ न हो सकेगी। रूस में जब तक किसान संगठन नहीं हुआ, रूस सरकार की ओर से देश-सेवकों पर

मनमाने अत्याचार होते रहे। जिस समय से "कैथोराइन" ने ग्रामीण-संगठन का कार्य अपने हाथ में लिया, स्थान-स्थान पर कृषक-सुधारक संघों की स्थापना की, घूम-घूमकर रूस के युवक तथा युवतियों ने जारशाही के विरुद्ध प्रचार आरंभ किया, तभी से किसानों को अपनी वास्तविक अवस्था का ज्ञान होने लगा और वे अपने मित्र तथा शत्रु को समझने लगे, उसी समय से जारशाही की नींव हिलने लगी। श्रमजीवियों के संघ भी स्थापित हुए। रूस में हड़तालों का आरंभ हुआ उसी समय से जनता की प्रवृत्ति को देखकर मदांधों के नेत्र खुल गए।

भारत में सबसे बड़ी कमी यही है कि इस देश के युवकों में शहरी जीवन व्यतीत करने की बान पड़ गई है। युवक-वृंद साफ-सुथरे कपड़े पहनने, पक्की सड़कों पर चलने, मीठा, खट्टा तथा चटपटा भोजन करने, विदेशी सामग्री से सुसज्जित बाजारों में घूमने, मेज-कुर्सी पर बैठने तथा विलासिता में फँसे रहने के आदी हो गए हैं। ग्रामीण जीवन को वे नितांत नीरस तथा शुष्क समझते हैं। उनकी समझ में गाँवों में अर्ध-सभ्य या जंगली लोग निवास करते हैं। यदि कभी किसी अंग्रेजी स्कूल या कालेज में पढ़ने वाला विद्यार्थी किसी कार्यवश अपने किसी संबंधी के यहाँ गाँव में पहुँच जाता है, तो उसे वहाँ दो-चार दिन काटना बड़ा कठिन हो जाता है। वह या तो कोई उपन्यास साथ ले जाता है, जिसे अलग बैठे पढ़ा करता है या पड़े-पड़े सोया करता है। किसी गाँववासी से बातचीत करने से उसका दिमाग थक जाता है, या उससे बातचीत करना वह अपनी शान के खिलाफ समझता है। गाँववासी जमींदार या रईस जो अपने लड़कों को अंग्रेजी पढ़ाते हैं, उनकी भी यही इच्छा रहती है कि जिस प्रकार हो सके उनके लड़के कोई सरकारी नौकरी पा जाएँ। ग्रामीण बालक जिस समय शहर में पहुँचकर शहरी शान को देखते हैं, इतनी बुरी तरह से उन पर फैशन का भूत सवार हो जाता है कि उनके मुकाबले फैशन बनाने की चिंता किसी को भी नहीं। थोड़े दिनों में उनके आचरण पर भी इसका प्रभाव पड़ता है और वे स्कूल के गंदे लड़कों के हाथ में पड़कर बड़ी बुरी-बुरी कुटैवों के घर बन जाते हैं। उनसे जीवन-पर्यंत अपना

ही सुधार नहीं हो पाता। फिर वे गाँववासियों का सुधार क्या खाक कर सकेंगे?

असहयोग आंदोलन में कार्यकर्त्ताओं की इतनी अधिक संख्या होने पर भी सबके सब शहर के प्लेटफार्मों पर लेक्चरबाजी करना ही अपना कर्त्तव्य समझते थे। ऐसे बहुत थोड़े कार्यकर्त्ता थे, जिन्होंने गाँवों में कुछ कार्य किया। उनमें भी अधिकतर ऐसे थे, जो केवल हुल्लड़ कराने में ही देशोद्धार समझते थे। परिणाम यह हुआ कि आंदोलन में थोड़ी-सी शिथिलता आते ही सब कार्य अस्त-व्यस्त हो गया। इसी कारण महामना देशबंधु चितरंजनदास ने अंतिम समय में गाँव-संगठन को ही अपने जीवन का ध्येय बनाया था। मेरे विचार से गाँव संगठन की सबसे सुगम रीति यही हो सकती है कि युवकों में शहरी जीवन छोड़कर ग्रामीण जीवन के प्रति प्रीति उत्पन्न हो। जो युवक मिडिल, एंट्रेंस, एम. ए., बी. ए. पास करने में हजारों रुपये नष्ट करके दस, पंद्रह, बीस या तीस रुपये की नौकरी के लिए ठोकरें खाते फिरते हैं उन्हें नौकरी का आसरा छोड़कर कोई उद्योग जैसे— बढ़ईगीरी, लुहारगीरी, दर्जी का काम, धोबी का काम, जूते बनाना, कपड़ा बुनना, मकान बनाना, राजगीरी आदि सीख लेना चाहिए। यदि जरा साफ सुथरे रहना हो तो वैद्यक सीखें। किसी बड़े गाँव या कस्बे में जाकर काम शुरू करें। उपरोक्त कामों में से कोई काम भी ऐसा नहीं है, जिसमें चार या पाँच घंटा मेहनत करके तीस रुपये मासिक की आय न हो जाए। गाँव में तीस रुपये मासिक शहर के साठ रुपये से अधिक हैं, क्योंकि गाँव में लकड़ी या कपड़ों का मूल्य बहुत कम होता है और यदि किसी जमींदार की कृपा हो गई और एक सूखा हुआ वृक्ष कटवा दिया तो छः महीने के लिए ईंधन की छुट्टी हो गई। शुद्ध घी, दूध सस्ते दामों में मिल जाता है और स्वयं एक या दो गाय या भैंस पाल ली, तब तो आम के आम गुठलियों के दाम ही मिल गए। चारा सस्ता मिलता है। घी-दूध वाल-बच्चे खाते हैं। कंडों का ईंधन होता है और यदि किसी की कृपा हो गई तो फसल पर एक या दो भुस की गाड़ी विना मूल्य ही मिल जाती है। अधिकतर काम-काजियों को गाँव में चारा, लकड़ी के लिए पैसा खर्च नहीं करना पड़ता।

हजारों अच्छे-अच्छे गाँव हैं, जिनमें वैद्य, दर्जी, धोबी निवास ही नहीं करते। उन गाँवों के लोगों को दस, बीस कोस दूर दौड़ना पड़ता है। वे इतने दुखी होते हैं कि जिसका अनुमान करना कठिन है। विवाह आदि के अवसरों पर यथासमय कपड़े नहीं मिलते। काष्ठादिक औषधियाँ बड़े-बड़े कस्बों में नहीं मिलतीं। यदि मामूली अत्तार बनकर ही कस्बे में बैठ जाएँ, और दो-चार किताबें देखकर औषधि दिया करें तो भी तीस-चालीस रुपये मासिक की आय तो कहीं गई ही नहीं। इस प्रकार उदर-निर्वाह तथा परिवार का प्रबंध हो जाता है। गाँवों की अधिक जनसंख्या से परिचय हो जाता है। परिचय ही नहीं, जिसका एक समय जरूरत पर काम निकल गया, वह आभारी हो जाता है। उसकी आँखें नीची रहती हैं। आवश्यकता पड़ने पर वह तुरंत सहायक होता है। गाँव में कौन ऐसा पुरुष है जिसका लुहार, बढ़ई, धोबी, दर्जी, कुम्हार या वैद्य से काम नहीं पड़ता? मेरा पूर्ण अनुभव है कि इन लोगों की भले-भले गाँववासी खुशामद करते रहते हैं।

रोजाना काम पड़ते रहने से और संबंध होने से यदि थोड़ी-सी चेष्टा की जाए और गाँववासियों को थोड़ा-सा उपदेश देकर उनकी दशा सुधारने का प्रयत्न किया जाए तो बड़ी जल्दी काम बने। अल्प समय में ही वे सच्चे स्वदेश भक्त खद्दरधारी बन जाएँ। यदि उनमें एक दो शिक्षित हों तो उत्साहित करके उसके पास एक समाचार पत्र मँगाने का प्रबंध कर दिया जाए। देश की दशा का भी उन्हें कुछ ज्ञान होता रहे। इसी तरह सरल-सरल पुस्तकों की कथाएँ सुनाकर उनमें से कुप्रथाओं को भी छुड़ाया जा सकता है। कभी-कभी स्वयं रामायण या भागवत की कथा भी सुनाया करें। यदि नियमित रूप से भागवत की कथा कहें तो पर्याप्त धन भी चढ़ावे में आ सकता है, जिससे एक पुस्तकालय स्थापित कर दें। कथा कहने के अवसर पर बीच-बीच में चाहे कितनी राजनीति का समावेश कर जाएँ, कोई खुफिया पुलिस का रिपोर्टर बैठा हो जो रिपोर्ट करे। वैसे यदि कोई खद्दरधारी गाँव में उपदेश करना चाहे तो तुरंत ही जमींदार पुलिस में खबर कर दे और यदि कस्बे के वैद्य, लड़के पढ़ाने वाले अथवा कथा कहने वाले पंडित कोई

बात कहें तो सब चुपचाप सुनकर उस पर अमल करने की कोशिश करते हैं और उन्हें कोई पूछता भी नहीं। इसी प्रकार अनेक सुविधाएँ मिल सकती हैं, जिनके सहारे ग्रामीणों की सामाजिक दशा सुधारी जा सकती है। रात्रि-पाठशालाएँ खोलकर निर्धन तथा अछूत जातियों के बालकों को शिक्षा दे सकते हैं। श्रमजीवी संघ स्थापित करने में शहरी जीवन तो व्यतीत हो सकता है, किन्तु इसके लिए उनके साथ अधिक समय खर्च करना पड़ेगा। जिस समय वे अपने-अपने काम से छुट्टी पाकर आराम करते हैं, उस समय उनके साथ वार्तालाप करके मनोहर उपदेशों द्वारा उनको उनकी दशा का दिग्दर्शन कराने का अवसर मिल सकता है। इन लोगों के पास समय बहुत कम होता है। इसलिए बेहतर यही होगा कि चित्ताकर्षक साधनों द्वारा किसी उपदेश करने की रीति से, जैसे लालटेन द्वारा तस्वीरें दिखाकर या किसी दूसरे उपाय से उनको एक स्थान पर एकत्रित किया जाए, तथा रात्रि पाठशालाएँ खोलकर उन्हें तथा उनके बच्चों को शिक्षा देने का भी प्रबंध किया जाए। जितने युवक उच्च शिक्षा प्राप्त करके व्यर्थ में धन व्यय करने की इच्छा रखते हैं उनके लिए उचित है कि वे अधिक-से-अधिक अंग्रेजी के दसवें दर्जे तक की योग्यता प्राप्त कर किसी कला-कौशल के सीखने का प्रयत्न करें और उस कला-कौशल द्वारा ही अपना जीवन निर्वाह करें।

जो धनी-मानी स्वदेश-सेवार्थ बड़े-बड़े विद्यालयों तथा पाठशालाओं की स्थापना करते हैं, उनको चाहिए कि विद्यापीठों के साथ-साथ उद्योग-पीठ, शिल्प-विद्यालय तथा कला-कौशल भवनों की स्थापना भी करें। इन विद्यालयों के विद्यार्थियों को नेतागीरी के लोभ से बचाया जाए। विद्यार्थियों का जीवन सादा हो और विचार उच्च हों। इन्हीं विद्यालयों में एक-एक उपदेशक विभाग भी हों, जिसमें विद्यार्थी प्रचार करने का ढंग सीख सकें। जिन युवकों के हृदय में स्वदेश सेवा के भाव हों, उनमें कष्ट सहन करने की आदत डालकर सुसंगठित रूप से ऐसा कार्य करना चाहिए, जिसका परिणाम स्थायी हो। केथोराइन* ने इसी प्रकार कार्य किया था।

---

* रूस की क्रांतिकारी नेता

उदर-पूर्ति के निमित्त केथोराइन के अनुयायी गाँवों में जाकर कपड़े सीते या जूते बनाते और रात्रि के समय किसानों को उपदेश देते थे। जिस समय केथोराइन की जीवनी (The Grandmother of the Russian Revolution) का अंग्रेजी भाषा में अध्ययन किया, मुझ पर उसका प्रभाव हुआ। मैंने तुरंत उसकी जीवनी "केथोराइन" नाम से हिन्दी में प्रकाशित कराई। मैं भी उसी प्रकार काम करना चाहता था, पर बीच में ही क्रांतिकारी दल में फँस गया। मेरा तो अब यह निश्चय हो गया है कि अभी पचास वर्ष तक क्रांतिकारी दल को भारत में सफलता नहीं मिल सकती, क्योंकि यहाँ की स्थिति उसके उपयुक्त नहीं। अतएव क्रांतिकारी दल का संगठन करके व्यर्थ में नवयुवकों के जीवन को नष्ट करना और शक्ति का दुरुपयोग करना आदि वड़ी भारी भूलें हैं। इससे लाभ के स्थान में हानि की संभावना बहुत अधिक है। नवयुवकों को मेरा अंतिम संदेश यही है कि वे रिवाल्वर या पिस्तौल को अपने पास रखने की इच्छा को त्याग कर सच्चे देश-सेवक बनें। पूर्ण स्वाधीनता उनका ध्येय हो और वे वास्तविक साम्यवादी बनने का प्रयत्न करते रहें। फल की इच्छा छोड़ कर सच्चे प्रेम से कार्य करें, परमात्मा सदैव ही उनका भला करेगा।

यदि देश-हित मरना पड़े मुझको सहस्रों-44 बार भी,
तो भी न मैं इस कष्ट को निज-45 ध्यान में लाऊँ कभी।
हे ईश-46 भारतवर्ष में-47 शत बार मेरा जन्म हो,
कारण सदा ही मृत्यु का देशोपकारक-48 कर्म हो।।

अंतिम समय की बातें

आज 16 दिसंबर, 1927 ई॰ को निम्नलिखित पंक्तियों का उल्लेख कर रहा हूँ, जबकि 19 सितंबर, 1927 ई. सोमवार (पौष कृष्ण 11 सम्वत, 1984 वि.) को साढ़े छः बजे प्रातःकाल इस शरीर को फाँसी पर लटका देने की तिथि निश्चित हो चुकी है। अतएव नियत समय पर इहलीला संवरण करनी होगी। यह सर्वशक्तिमान

प्रभु की लीला है। सब कार्य उसकी इच्छानुसार ही होते हैं। यह परमपिता परमात्मा के नियमों का परिणाम है कि किस प्रकार किसको शरीर त्यागना होता है। मृत्यु के सकल उपक्रम सारे निमित्त मात्र हैं। जब तक कर्म क्षय नहीं होता आत्मा को जन्म मरण के बंधन में पड़ना ही होता है, यह शास्त्रों का निश्चय है। यद्यपि यह बात वह परब्रह्म ही जानता है कि किन कर्मों के परिणामस्वरूप कौन-सा शरीर इस आत्मा को ग्रहण करना होगा किंतु अपने लिए यह मेरा दृढ़ निश्चय है कि मैं उत्तम शरीर धारण कर नवीन शक्तियों सहित अति शीघ्र ही पुनः भारत में ही किसी निकटवर्ती संबंधी या इष्ट मित्र के गृह में जन्म ग्रहण करूँगा, क्योंकि मेरा जन्म-जन्मांतर उद्देश्य रहेगा कि मनुष्य मात्र को सभी प्रकृति पदार्थों पर समानाधिकार प्राप्त हो। कोई किसी पर हुकूमत न करे। सारे संसार में जनतंत्र की स्थापना हो। वर्तमान समय में भारत की अवस्था (दशा) बड़ी शोचनीय है। अतएव लगातार कई जन्म इसी देश में ग्रहण करने होंगे और जब तक कि भारत के नर-नारी पूर्णतया सर्वरूपेण (हर तरह से) स्वतंत्र न हो जाएँ, परमात्मा से मेरी यह प्रार्थना होगी कि वह मुझे इसी देश में जन्म दें, ताकि उसकी पवित्र वाणी– "वेद वाणी" का अनुपम घोष मनुष्य मात्र के कानों तक पहुँचाने में समर्थ हो सकूँ। सम्भव है कि मैं मार्ग-निर्धारण में भूल करूँ, पर इसमें मेरा विशेष दोष नहीं, क्योंकि मैं भी तो अल्पज्ञ (कम जानकारी रखने वाला) जीव मात्र हूँ। भूल न करना केवल सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाले ईश्वर) से ही संभव है। हमें परिस्थितियों के अनुसार ही सब कार्य करने पड़ें और करने होंगे। परमात्मा अगले जन्म में सुबुद्धि प्रदान करे ताकि मैं जिस मार्ग का अनुसरण करूँ, वह त्रुटि रहित ही हो।

अब मैं उन बातों का भी उल्लेख कर देना उचित समझता हूँ, जो काकोरी षड्यंत्र के अभियुक्तों के संबंध में सेशन जज के फैसला सुनाने के बाद घटित हुईं। 6 अप्रैल सन् 1927 ई. को सेशन जज ने फैसला सुनाया था। 18 जुलाई सन् 1927 ई. को अवध चीफ़ कोर्ट में अपील हुई। इसमें सज़ाएँ कुछ बढ़ीं और

एकाध की कमी भी हुई। अपील होने की तारीख से पहले मैंने संयुक्त प्रांत के गवर्नर की सेवा में एक मेमोरियल (ज्ञापन) भेजा था, जिसमें प्रतिज्ञा की थी कि अब भविष्य में क्रांतिकारी दल से कोई संबंध न रखूँगा। इस मेमोरियल का जिक्र मैंने अपनी अंतिम दया-प्रार्थना पत्र में, जो मैंने चीफ कोर्ट के जजों को दिया था, कर दिया था, किन्तु चीफ कोर्ट के जजों ने मेरी किसी प्रकार की प्रार्थना स्वीकार न की। मैंने स्वयं ही जेल से अपने मुकदमे की बहस लिखकर भेजी जो छापी गई। जब यह बहस चीफ कोर्ट के जजों ने सुनी उन्हें बड़ा संदेह हुआ कि बहस मेरी लिखी हुई न थी। इन तमाम बातों का नतीजा यह निकला कि चीफ कोर्ट अवध द्वारा मुझे महाभयंकर षड्यंत्रकारी की पदवी दी गई। मेरे पश्चाताप पर जजों को विश्वास न हुआ और उन्होंने अपनी धारणा को इस प्रकार प्रकट किया कि यदि यह (रामप्रसाद) छूट गया तो फिर वही कार्य करेगा। बुद्धि की प्रखरता तथा समझ पर प्रकाश डालते हुए मुझे "निर्दयी हत्यारे" के नाम से विभूषित किया गया। लेखनी उनके हाथ में थी, जो चाहे सो लिखते, किन्तु काकोरी षड्यंत्र का चीफ कोर्ट का आद्योपांत फैसला पढ़ने से भली भाँति विदित होता है कि मुझे मृत्यु-दंड किस ख्याल से दिया गया। यह निश्चय किया गया कि रामप्रसाद ने सेशन जज के विरुद्ध अपशब्द कहे हैं, खुफिया विभाग के कार्यकर्त्ताओं पर लांछन लगाए हैं अर्थात अभियोग के समय जो अन्याय होता था, उसके विरुद्ध आवाज़ उठाई है, अतएव रामप्रसाद सब से बड़ा गुस्ताख मुलजिम है। अब माफी चाहे वह किसी रूप में माँगे, नहीं दी जा सकती।

चीफ कोर्ट से अपील खारिज हो जाने के बाद यथानियम प्रांतीय गवर्नर तथा फिर वाइसराय के पास दया-प्रार्थना की गई। रामप्रसाद "बिस्मिल", राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, रोशनसिंह तथा अशफाकउल्ला खाँ के मृत्यु-दंड को बदलकर अन्य दूसरी सज़ा देने की सिफारिश करते हुए संयुक्त प्रांत की कौंसिल के लगभग सभी निर्वाचित मेंबरों ने हस्ताक्षर करके निवेदन-पत्र दिया। मेरे पिता ने ढाई सौ रईस, आनरेरी मजिस्ट्रेट तथा जमींदारों के हस्ताक्षर से एक अलग प्रार्थना-पत्र भेजा किंतु

श्रीमान सर विलियम मेरिस की सरकार ने एक न सुनी। उसी समय लेजिस्लेटिव असेंबली तथा कौंसिल ऑफ स्टेट के 78 सदस्यों ने हस्ताक्षर करके वाइसराय के पास प्रार्थना-पत्र भेजा कि "काकोरी षड्यंत्र के मृत्यु-दंड पाए हुए लोगों को मृत्यु-दंड की सज़ा बदलकर दूसरी सज़ा कर दी जाए, क्योंकि दौरा जज ने सिफारिश की है कि यदि ये लोग पश्चाताप करें तो सरकार दंड कम कर दे। चारों अभियुक्तों ने पश्चाताप प्रकट कर दिया है।" किन्तु वाइसराय महोदय ने भी एक न सुनी।

इस विषय में माननीय पं. मदनमोहन मालवीय जी ने तथा असेंबली के कुछ अन्य सदस्यों ने वाइसराय से मिलकर भी प्रयत्न किया था कि मृत्यु-दंड न दिया जाए। इतना होने पर सबको आशा थी कि वाइसराय महोदय अवश्यमेव मृत्यु-दंड की आज्ञा रद्द कर देंगे। इसी हालत में चुपचाप विजयादशमी से दो दिन पहले जेलों को तार भेज दिए गए कि दया नहीं होगी। सबकी फांसी की तारीख मुकर्रर हो गई। जब मुझे सुपरिंटेंडेंट जेल ने तार सुनाया, तो मैंने भी कह दिया कि आप अपना काम कीजिए। किंतु सुपरिंटेंडेंट जेल के अधिक कहने पर कि एक तार दया-प्रार्थना का सम्राट के पास भेज दो, क्योंकि यह उन्होंने एक नियम-सा बना रखा है कि प्रत्येक फाँसी के कैदी की ओर से जिसकी दया-भिक्षा की अर्जी वाइसराय के यहाँ से खारिज हो जाती है, वह एक तार सम्राट के नाम से प्रांतीय सरकार के पास अवश्य भेजते हैं। कोई दूसरा जेल सुपरिंटेंडेंट ऐसा नहीं करता। उपरोक्त तार लिखते समय मेरा कुछ विचार हुआ कि प्रिवी-कौंसिल (सर्वोच्च न्यायालय) इंग्लैंड में अपील की जाए। मैंने श्री मोहनलाल सक्सेना वकील लखनऊ को सूचना दी। बाहर किसी को वाइसराय द्वारा अपील खारिज करने की बात पर विश्वास भी न हुआ। जैसे तैसे करके श्री मोहनलाल द्वारा प्रिवी-कौंसिल में अपील कराई गई। नतीजा जो पहले से मालूम था। वहाँ से भी अपील खारिज हुई। यह जानते हुए कि अंग्रेज सरकार कुछ भी न सुनेगी मैंने सरकार को प्रतिज्ञा-पत्र क्यों लिखा? क्यों अपीलों पर अपीलें तथा दया-प्रार्थनाएँ कीं? इस प्रकार से प्रश्न उठ सकते हैं।

मेरी समझ में सदैव यही आया कि राजनीति एक शतरंज के खेल के समान है। शतरंज के खेलने वाले भली-भाँति जानते हैं कि आवश्यकता होने पर किस प्रकार अपने मोहरे मरवा देने पड़ते हैं। बंगाल आर्डिनेंस के कैदियों के छोड़ने या उन पर खुली अदालत में मुकदमा चलाने के प्रस्ताव जब असेम्बली में पेश किए गए, तो सरकार की ओर से बड़े जोरदार शब्दों में कहा गया कि, सरकार के पास पूरा सबूत है। खुली अदालत में अभियोग चलाने से गवाहों पर आपत्ति आ सकती है। यदि आर्डिनेंस के कैदी लेखबद्ध प्रतिज्ञा-पत्र दें कि वे भविष्य में क्रांतिकारी आंदोलन से कोई संबंध न रखेंगे, तो सरकार उन्हें रिहाई देने के विषय में विचार कर सकती है। बंगाल में दक्षिणेश्वर तथा शोभा बाजार बम केस आर्डिनेंस के बाद चले खुफिया विभाग के डिप्टी सुपरिंटेंडेंट के कत्ल का मुकदमा भी खुली अदालत में हुआ। और भी कुछ हथियारों के मुकदमे खुली अदालत में चलाए गए, किन्तु कोई एक भी दुर्घटना या हत्या की सूचना पुलिस न दे सकी। काकोरी षड्यंत्र केस पूरे डेढ़ साल तक खुली अदालतों में चलता रहा। सबूत की ओर से लगभग तीन सौ गवाह पेश किए गए। कई मुखबिर तथा इकबाली (पुलिस को सूचना देने वाले और अपना अपराध स्वीकार करने वाले) खुले तौर से घूमते रहे, पर कहीं कोई दुर्घटना या किसी को धमकी देने की कोई सूचना पुलिस ने न दी। सरकार की इन बातों की पोल खोलने की गरज से मैंने लेखबद्ध प्रतिज्ञा सरकार को दी। सरकार के कथनानुसार जिस प्रकार बंगाल आर्डिनेंस के कैदियों के संबंध में सरकार के पास पूरा सबूत था और सरकार उनमें से अनेक को भयंकर षड्यंत्रकारी दल का सदस्य तथा हत्याओं का जिम्मेदार समझती तथा कहती थी, तो इसी प्रकार काकोरी के षड्यंत्रकारियों के लेखबद्ध-प्रतिज्ञा करने पर कोई गौर क्यों नहीं किया गया? बात यह है कि जबरा मारे रोने न देय। मुझे तो भली-भाँति मालूम था कि संयुक्त प्रांत में जितने राजनैतिक अभियोग चलाए जाते हैं, उनके फैसले खुफिया पुलिस की इच्छानुसार लिखे जाते हैं। बरेली पुलिस कांस्टेबिलों की हत्या के अभियोग में नितांत निर्दोष

नवयुवकों को फँसाया गया और सी. आई. डी. वालों ने अपनी डायरी दिखलाकर फैसला लिखाया। काकोरी षड्यंत्र में भी अंत में ऐसा ही हुआ। सरकार की सब चालों को जानते हुए भी मैंने सब कार्य उसकी लंबी-लंबी बातों की पोल खोलने के लिए ही किए। काकोरी के मृत्युदंड पाए हुओं की दया-प्रार्थना न स्वीकार करने का कोई विशेष कारण सरकार के पास नहीं। सरकार ने बंगाल अर्डिनेंस के कैदियों के संबंध में जो कुछ कहा था, सो काकोरी वालों ने किया। मृत्यु-दंड को रद्द कर देने से देश में किसी प्रकार की शांतिभंग होने अथवा किसी विप्लव हो जाने की संभावना नहीं थी। विशेषतया जब कि देश भर के सब प्रकार के हिन्दू-मुसलमान असेंबली के सदस्यों ने इसकी सिफारिश की थी। षड्यंत्रकारियों की इतनी बड़ी सिफारिश इससे पहले कभी नहीं हुई। किंतु सरकार तो अपना सारा सीधा रखना चाहती है। उसे अपने बल पर विश्वास है। सर विलियम मेरिस ने ही स्वयं शाहजहाँपुर तथा इलाहाबाद के हिन्दू-मुस्लिम दंगे के अभियुक्तों के मृत्यु-दंड रद्द किए हैं, जिनको कि इलाहाबाद हाई कोर्ट से मृत्यु-दंड ही देना उचित समझा गया था और उन लोगों पर दिन दहाड़े हत्या करने के सीधे सबूत मौजूद थे। ये सज़ाएँ ऐसे समय माफ की गई थीं, जबकि नित्य नए हिन्दू-मुस्लिम दंगे बढ़ते ही जाते थे। यदि काकोरी के कैदियों को मृत्यु-दंड माफ करके, दूसरी सज़ा देने से दूसरों का उत्साह बढ़ता तो क्या इसी प्रकार मजहबी दंगों के संबंध में भी नहीं हो सकता था? मगर वहाँ तो मामला कुछ और ही है, जो अब भारतवासियों के नरम से नरम दल के नेताओं के भी शाही कमीशन के मुकर्रर होने तथा उनमें एक भी भारतवासी के न चुने जाने, पार्लियामेंट में भारत सचिव लार्ड बर्कन हेड के तथा अन्य मजदूर दल के नेताओं के भाषणों से भली-भाँति समझ में आया है कि किस प्रकार भारत को गुलामी की जंजीरों में जकड़े रहने की चालें चली जा रही हैं।

मैं प्राण त्यागते समय निराश नहीं हूँ कि हम लोगों के बलिदान व्यर्थ गए। मेरा तो विश्वास है कि हम लोगों की छिपी हुई आहों का ही यह नतीजा हुआ

कि लार्ड बर्कन हेड के दिमाग में परमात्मा ने एक विचार उपस्थित किया कि हिन्दुस्तान के हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों का लाभ उठाओ और भारत की जंजीरें और कस दो। गए थे रोजा छोड़ने नमाज गले पड़ गई। भारत के प्रत्येक विख्यात राजनैतिक दल ने और हिंदुओं के तो लगभग सभी तथा मुसलमानों के भी अधिकतर नेताओं ने एक स्वर होकर रायल कमीशन (साइमन कमीशन) की नियुक्ति तथा उसके सदस्यों के विरुद्ध घोर विरोध किया है, और कांग्रेस के मद्रास में होने वाले अधिवेशन में सब राजनैतिक दल के नेता तथा हिन्दू-मुसलमान एक होने जा रहे हैं। वाइसराय ने जब हम काकोरी के मृत्यु-दंड वालों की दया-प्रार्थना अस्वीकार की थी, उसी समय मैंने श्री मोहनलाल जी को पत्र लिखा था कि हिन्दुस्तानी नेताओं को तथा हिन्दू-मुसलमानों को अगली कांग्रेस (अधिवेशन) पर एकत्रित हो हम लोगों की याद मनानी चाहिए। सरकार ने अशफाकउल्ला को रामप्रसाद का दाहिना हाथ करार दिया। अशफाकउल्ला कट्टर मुसलमान होकर पक्के आर्यसमाजी रामप्रसाद का क्रांतिकारी दल के संबंध में यदि दाहिना हाथ बन सकते हैं, तब क्या भारत की स्वतंत्रता के नाम पर हिन्दू-मुसलमान अपने निजी छोटे-छोटे फायदों का ख्याल न करके आपस में एक नहीं हो सकते?–49

परमात्मा ने मेरी पुकार सुन ली और मेरी इच्छा पूरी होती दिखाई देती है। मैं तो अपना कार्य कर चुका। मैंने मुसलमानों में से एक नवयुवक निकालकर भारतवासियों को दिखला दिया, जो सब परीक्षाओं में पूर्णतया उत्तीर्ण हुआ। अब किसी को यह कहने का साहस न होना चाहिए कि मुसलमानों पर विश्वास न करना चाहिए। पहला तजुर्बा था, जो पूरी तौर से कामयाब हुआ। अब देशवासियों से यही प्रार्थना है कि यदि वे हम लोगों के फाँसी पर चढ़ने से जरा भी दुखित हुए हों, तो उन्हें यही शिक्षा लेनी चाहिए कि हिन्दू-मुसलमान तथा सब राजनैतिक दल एक होकर कांग्रेस को अपना प्रतिनिधि मानें। जो कांग्रेस तय करें, उसे सब पूरी तौर से मानें और उस पर अमल करें। ऐसा करने के बाद वह दिन बहुत दूर न होगा जबकि अंग्रेजी सरकार को भारतवासियों की माँग के सामने सिर

झुकाना पड़े, और यदि ऐसा करेंगे तब तो स्वराज्य कुछ दूर नहीं। क्योंकि फिर तो भारतवासियों को काम करने का पूरा मौका मिल जाएगा। हिन्दू-मुस्लिम एकता ही हम लोगों की यादगार तथा अंतिम इच्छा है, चाहे वह कितनी कठिनाई से क्यों न प्राप्त हो। जो मैं कह रहा हूँ वही श्री अशफाकउल्ला खाँ वारसी का भी मत है, क्योंकि अपील के समय हम दोनों लखनऊ जेल में फाँसी की कोठरियों में आमने-सामने कई दिन तक रहे थे। आपस में हर तरह की बातें हुई थीं। गिरफ्तारी के बाद से हम लोगों की सज़ा बढ़ने तक श्री अशफाकउल्ला खाँ की बड़ी भारी उत्कट इच्छा यही थी कि वह एक बार मुझसे मिल लेते, जो परमात्मा ने पूरी कर दी।

श्री अशफाकउल्ला खाँ तो अंग्रेजी सरकार से दया-प्रार्थना करने पर राजी ही न थे। उनका तो अटल विश्वास यही था कि खुदाबंद करीम के अलावा किसी दूसरे से दया प्रार्थना न करनी चाहिए, परन्तु मेरे विशेष आग्रह से ही उन्होंने सरकार से दया-प्रार्थना की थी। इसका दोषी मैं ही हूँ, जो मैंने अपने प्रेम के पवित्र अधिकारों का उपयोग करके श्री अशफाकउल्ला खाँ को उनके दृढ़ निश्चय से विचलित किया। मैंने एक पत्र द्वारा अपनी भूल स्वीकार करते हुए भ्रातृ-द्वितीया के अवसर पर गोरखपुर जेल से भी अशफाक को पत्र लिखकर क्षमा-प्रार्थना की थी। परमात्मा जाने कि वह पत्र उनके हाथों तक पहुँचा भी या नहीं। खैर! परमात्मा की ऐसी ही इच्छा थी कि हम लोगों को फाँसी दी जाए, भारतवासियों के जले हुए दिलों पर नमक पड़े, वे बिलबिला उठें और हमारी आत्माएँ उनके कार्य को देखकर दुखी हों। जब हम नवीन शरीर धारण करके देश-सेवा में योग देने को उद्यत हों, उस समय तक भारत की राजनैतिक स्थिति पूर्णतया सुधरी हुई हो। जनसाधारण का अधिक भाग सुशिक्षित हो जाए। ग्रामीण लोग भी अपने कर्त्तव्य समझने लग जाएँ।

प्रिवी कौंसिल में अपील भिजवाकर मैंने जो व्यर्थ का अपव्यय करवाया, उसका भी एक विशेष अर्थ था। सब अपीलों का तात्पर्य यह था कि मृत्यु-दंड

उपयुक्त नहीं। क्योंकि न जाने किसकी गोली से आदमी मारा गया। अगर डकैती डालने की जिम्मेदारी के ख्याल से मृत्यु-दंड दिया गया तो चीफ कोर्ट के फैसले के अनुसार भी मैं ही डकैतियों का जिम्मेदार तथा नेता था, और प्रांत का नेता भी मैं ही था। अतएव मृत्यु-दंड तो केवल मुझे ही मिलना चाहिए था। अन्य तीन को फाँसी नहीं देनी चाहिए थी। इसके अतिरिक्त दूसरी सज़ाएँ सब स्वीकार होतीं। पर ऐसा क्यों होने लगा? मैं विलायती न्यायालय की भी परीक्षा करके स्वदेशवासियों के लिए उदाहरण छोड़ना चाहता था कि यदि कोई राजनैतिक अभियोग चले तो वे कभी भूलकर के भी किसी अंग्रेजी अदालत का विश्वास न करें। तबियत आए तो जोरदार बयान दें। अन्यथा मेरी तो यही राय है कि अंग्रेजी अदालत के सामने न तो कभी कोई बयान दें और न कोई सफाई पेश करें। काकोरी षड्यंत्र के अभियोग से शिक्षा प्राप्त कर लें। इस अभियोग में सब प्रकार के उदाहरण मौजूद हैं। प्रिवी-कौंसिल में अपील दाखिल कराने का एक विशेष अर्थ यह भी था कि मैं कुछ समय तक फाँसी की तारीख टलवा कर यह परीक्षा करना चाहता था कि नवयुवकों में कितना दम है और देशवासी कितनी सहायता दे सकते हैं। इसमें मुझे बड़ी निराशापूर्ण असफलता हुई। अंत में मैंने निश्चय किया था कि यदि हो सके, तो जेल से निकल भागूँ। ऐसा हो जाने से सरकार को अन्य तीनों फाँसी वालों की सज़ा माफ कर देनी पड़ेगी और यदि न करते तो मैं करा लेता। मैंने जेल से भागने के अनेक प्रयत्न किए, किन्तु बाहर से कोई सहायता न मिल सकी। यही तो हृदय पर आघात लगता है कि जिस देश में मैंने इतना बड़ा क्रांतिकारी आंदोलन तथा षड्यंत्रकारी दल खड़ा किया था, वहाँ से मुझे प्राण-रक्षा के लिए एक रिवाल्वर तक न मिल सका। एक नवयुवक भी सहायता को न आ सका।-[50] अंत में फाँसी पा रहा हूँ। फाँसी पाने का मुझे कोई भी शौक नहीं, क्योंकि मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि परमात्मा को यही मंजूर था। मगर मैं नवयुवकों से फिर भी नम्र निवेदन करता हूँ कि जब तक भारतवासियों की अधिक संख्या सुशिक्षित न हो जाए, जब तक उन्हें कर्त्तव्य

अकर्त्तव्य का ज्ञान न हो जाए, तब तक वे भूलकर भी किसी प्रकार के क्रांतिकारी षड्यंत्रों में भाग न लें। यदि देश सेवा की इच्छा हो तो खुले आंदोलनों द्वारा यथाशक्ति कार्य करें, अन्यथा उनका बलिदान उपयोगी न होगा। दूसरे प्रकार से इससे अधिक देशसेवा हो सकती है, जो ज़्यादा उपयोगी सिद्ध होगी। परिस्थिति अनुकूल न होने से ऐसे आंदोलनों में परिश्रम प्रायः व्यर्थ जाता है। जिनकी भलाई के लिए करो, वही बुरे-बुरे नाम धरते हैं और अंत में मन-ही-मन कुढ़-कुढ़ कर प्राण त्यागने पड़ते हैं।[51]

देशवासियों से यही अंतिम विनय है कि जो कुछ करें, सब मिलकर करें और सब देश की भलाई के लिए करें। इसी से सबका भला होगा।

मरते "बिस्मिल" "रोशन" "लहरी" "अशफाक" अत्याचार से।
होंगे पैदा सैकड़ों इनके रुधिर की धार से।।

शब्दार्थ एवं टिप्पणियाँ

1. तोमरधार : मध्य प्रदेश के मुरैना ज़िला में चंबल नदी के किनारे स्थित एक बड़े भूभाग को तोमरधार कहा जाता है। इसी क्षेत्र में चंबल नदी के किनारे बरवाई और रूअर नामक दो गाँव हैं। मुरैना ज़िला स्वाधीनता से पूर्व ग्वालियर की देशी रियासत में था। महिला डाकू पुतली बाई बरवाई गाँव की ही थी।
2. बीहड़ : चंबल नदी ने अपने दोनों किनारों की हजारों हैक्टेयर भूमि को काट कर ऊँचे-नीचे टीलों और गहरी घाटियों में बदल दिया है। इस क्षेत्र को कठिन मार्ग वाला क्षेत्र अर्थात बीहड़ कहते हैं। इनमें आना-जाना कठिन है। ठाकुर मलखान सिंह, पुतली बाई, फूलनदेवी आदि डाकू इन्हीं बीहड़ों में छिपे रहते थे।
3. अंग्रेजी राज्य : स्वतंत्रता से पूर्व भारत पर अंग्रेजों का राज्य था। भारत के जिन क्षेत्रों पर अंग्रेजों का पूरा कब्जा था उन्हें अंग्रेजी राज्य का क्षेत्र कहते थे। देश के शेष भागों में ग्वालियर, इंदौर, जयपुर आदि राजाओं की रियासतें थीं। इनको रियासत कहते थे।
4. शूद्र जाति : यहाँ शहीद रामप्रसाद बिस्मिल ने जाति प्रथा का विरोध किया है। वह मनुष्यों के बीच जाति के नाम पर कोई भेदभाव नहीं करते थे और सबको समान मानते थे।
5. मेजिनी : मेजिनी इटली के राष्ट्रीय क्रांतिकारी नेता थे। उन्होंने अपने देश में स्वतंत्रता व जनतंत्र के लिए आंदोलन किया था। भारत व अन्य देशों के क्रांतिकारियों पर मेजिनी के विचारों का बहुत प्रभाव पड़ा था।
6. भाई परमानन्द : भाई परमानन्द भारत के प्रमुख राष्ट्रीय नेता थे। उनका भारत में तथा भारत से बाहर यूरोप, अमरीका व कनाडा में काम कर रहे भारतीय क्रांतिकारियों से संबंध था। लाहौर षड्यंत्र केस में भाई परमानन्द को फाँसी की सजा दी गई थी परन्तु बाद में वह कारावास की सजा में बदल दी गई थी।
7. देशवासियों से निवेदन : (अ) देशवासियों से निवेदन शीर्षक पर्चा सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी नेता व विचारक शचीन्द्रनाथ सान्याल ने लिखा था। शचीन्द्रनाथ ने एक अन्य पर्चा

"रेवोल्यूशनरी" तथा बंदी जीवन, विचार-विनिमय, समाज व संस्कृति आदि पुस्तकें भी लिखी थीं। ये पर्चे तथा पुस्तकें भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन तथा क्रांतिकारियों की विचारधारा पर बहुत अच्छा प्रकाश डालती हैं। शचीन्द्रनाथ सान्याल को काकोरी षड्यंत्र केस में आजीवन कारावास की सजा मिली थी। इस केस में रामप्रसाद बिस्मिल को फाँसी की सजा दी गई थी। "देशवासियों से निवेदन" पर्चा ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें लिखा गया था : "क्रांतिकारी आंदोलन आतंकवाद नहीं है, क्योंकि भारत में किसी भी क्रांतिकारी का यह विश्वास नहीं है कि केवल आतंकवाद से ही स्वाधीनता प्राप्त हो सकती है। यदि सरकारी अत्याचारों के विरुद्ध इक्का-दुक्का व्यक्ति भरी हुई पिस्तौल का प्रयोग करते हैं तो उसका अर्थ यह नहीं हुआ कि क्रांतिकारी निरे आतंकवाद की लड़ाई लड़ना चाहते हैं।"

(ब) गेंदालाल दीक्षित प्रमुख क्रांतिकारी नेता थे। उन्होंने "मातृवेदी" और "शिवाजी समिति" नामक क्रांतिकारी संगठन बनाए थे। रामप्रसाद बिस्मिल इन संगठनों के सदस्य थे। दीक्षितजी व बिस्मिल मैनपुरी षड्यंत्र केस के अभियुक्तों में थे।

8. श्राद्ध : क्रांतिकारी आपसी पत्रव्यवहार में सांकेतिक शब्दों का प्रयोग करते थे, ताकि पुलिस को उनके कार्यों का पता न चल जाए। यहाँ श्राद्ध शब्द का प्रयोग बैठक के लिए किया गया है। दल में क्रांतिकारियों का नाम भी बदल दिया जाता था। यहाँ रामप्रसाद बिस्मिल ने पत्र पर अपने गुप्त नाम रूद्र से हस्ताक्षर किए थे।

उर्दू शब्द	हिन्दी में अर्थ
9. तुर्बत	कब्र
10. माशूक	प्रेमिका
11. एहसान	उपकार

भावार्थ : यदि प्रेमिका मेरी कब्र पर फूल चढ़ाने आये तो फूल के बोझ से कब्र दब सी जाती है। फिर भी उसका यह उपकार भी बहुत है।

12. बेवफा	निष्ठाहीन
13. शहीदाने—शहीदों की	इसका अर्थ है जैसे किसी मुर्गे की गर्दन पर छूरी चला दी जाए।
14. वफा	निष्ठा
15. दीनो ईमां	धर्म

16. सिजदे करना — शीश नवाना
17. जल्लाद — तलवार से गर्दन काटने वाला

भावार्थ : हम अपनी निष्ठा के लिए अपना बलिदान करने वाले हैं। हमारा धर्म सारी दुनिया से अलग है। हमें जिससे प्यार है, हम उसी के पाँव पर शीश नवाते हैं ताकि उसे हमारी गर्दन पर तलवार चलाने में कठिनाई न हो।

18. असगर — यह कवि का उपनाम है
19. हरीम — मस्जिद
20. इश्क — प्रेम
21. हस्ती — व्यक्तित्व
22. जुर्म — अन्याय

भावार्थ : रामप्रसाद बिस्मिल किसी और कवि असगर के हवाले से कहते हैं कि प्रेम के पवित्र स्थल में अपने अस्तित्व का अहं ही अपराध है। यहाँ पाँव रखना हो तो कंधे पर सिर नहीं होना चाहिए।

भावार्थ : यहाँ मनुष्य कहता है कि हे भगवान जो भी कार्य हुए हैं वह सब आपने किए है। मैंने कुछ भी नहीं किया है। जहाँ भी मैंने कोई कार्य किए हैं उनके सम्पन्न होने का कारण यह है कि आप ही मेरे हृदय में बसे थे।

23. महसूस करना — अनुभव करना
24. बादे — हवा
25. फना — मौत
26. असरार — रहस्य
27. बारे — बोझ
28. अलम — गम
29. रंगे निशात — आनन्द का रंग
30. अंदाज — पता चल जाना
31. बेहिसी — अन्दर से सुन्न हो जाना
32. वफ़ा — निष्ठा
33. सदके — न्यौछावर
34. नज़रे ज़ुफ़ा करना — तेरे ज़ुल्म पर मैं अपनी बलि देता हूँ
35. लाज़िम — आवश्यक
36. फ़िदा — लुटा देना

भावार्थ अब मैं मृत्यु के झोंके अनुभव करने लगा हूँ। यानि मुझ पर जीवन का रहस्य खुलने लगा है। मैंने भरपूर गम भी देखा है और भरपूर खुशी भी। जो मैं अन्दर से सुन्न होकर रह गया हूँ यह कोई अकारण घटना नहीं है। निष्ठा को दिल की बलि चढ़ा दे और जीवन को प्रेमिका के अत्याचारों की भेंट चढ़ा दे क्योंकि प्यार में यह आवश्यक है कि प्रेमी के पास जो कुछ भी है उसे वह लुटा दे।

37. बहरे	समुद्र
38. फना	मृत्यु
39. रब	ईश्वर
40. बिस्मिल	यह कवि का उपनाम है
41. जौहरे शमशीर	तलवार की वीरता
42. क़ातिल	हत्यारा
43. दागें नाकामी	असफलता का चिह्न

भावार्थ : हे ईश्वर बिस्मिल की लाश को मृत्यु के सागर में जल्दी बहा दे क्योंकि मेरी प्रेमिका की तलवार की वीरता मेरी लहू की प्यासी है। ऐ मेरी असफलता के दाग मेरे दिल को सोच समझ कर फूंकना क्योंकि यह बुरी तरह उजड़ चुका है, फिर भी इसमें अनेक इच्छायें सांस ले रही हैं। यहाँ प्रेमिका का प्रयोग देश की स्वतंत्रता के लिए किया गया है।

हिन्दी शब्द	अर्थ
44. सहस्रों	हजारों
45. निज	अपने
46. ईश	ईश्वर
47. शत	सौ
48. देशोपकारक	देश की भलाई के लिए

भावार्थ : यदि देश की भलाई के लिए मुझे हजारों बार मरना पड़े तब भी मैं मृत्यु के इस कष्ट पर कभी ध्यान न दूँ। हे ईश्वर मेरा अपने देश भारत में ही जन्म बार-बार हो और मैं हर बार अपने देश की भलाई के लिए ही अपने प्राण दूँ।

टिप्पणी : शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की भगवान से यह प्रार्थना सिद्ध करती है कि वह महान देशप्रेमी थे। वह देश की स्वतंत्रता व भलाई के लिए एक बार नहीं हजारों बार जन्म लेना और हजारों बार मरना चाहते थे। रामप्रसाद बिस्मिल की तरह मदन लाल धींगरा आदि अनेक भारतीय क्रांतिकारियों ने जेलों, अदालतों या फाँसी के तख्तों

पर इस अनुपम और आदर्श देशप्रेम व बलिदान की भावनाओं को अभिव्यक्त किया था। ऐसे देशप्रेमी स्वाधीनता सेनानियों के संघर्षो व बलिदानों से ही हमारा प्यारा देश भारत स्वतंत्र हुआ। भारत के हर नागरिक को अपने हृदय में देशप्रेम व देशसेवा की भावनाएँ भरनी चाहिए। हम अपने देश की सुरक्षा करके, उसकी एकता को कायम रख कर और धर्म, सम्प्रदाय या जाति का कोई भेदभाव किए बिना देश की समस्त जनता की भलाई के लिए कार्य करके ही ऐसा कर सकते हैं।

49. टिप्पणी : शहीद रामप्रसाद बिस्मिल ने अपने प्रिय साथी शहीद अशफाकउल्ला के कार्यो पर गर्व प्रकट करते हुए देशवासियों से अपील की है कि सभी धर्मो व संप्रदायों के लोग भेदभाव छोड़ कर और एक होकर देश की स्वतंत्रता के लिए कार्य करें। वह साईमन कमीशन के विरोध में देश में प्रदर्शित की गई एकता को आशा भरी निगाहों से देखते हैं और 1927 में मद्रास में होने वाले कांग्रेस के अधिवेशन से भी आशा रखते हैं।

50. टिप्पणी : रामप्रसाद बिस्मिल के क्रांतिकारी साथियों भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, शिव वर्मा आदि ने गुप्त रूप से उन्हें गोरखपुर जेल से भगा ले जाने का प्रयास किया था परंतु यह प्रयास सफल नहीं हो सका। रामप्रसाद बिस्मिल को जेल में इस बात की सूचना नहीं मिल पाई थी कि उनके साथी उन्हें जेल से भगा ले जाने का प्रयास कर रहे हैं।

51. टिप्पणी : शहीद रामप्रसाद बिस्मिल क्रांतिकारी आंदोलन के अपने अनुभवों के आधार पर देश के नौजवानों को सलाह देते हैं कि वे बम व पिस्तौल से व्यक्तिगत हत्याएँ करने का मार्ग छोड़ कर पहले जनता को शिक्षित व संगठित करें और देश की स्वतंत्रता के लिए खुले जन आंदोलनों में शामिल हों। रामप्रसाद बिस्मिल की तरह रासबिहारी बोस, शचीन्द्र नाथ सान्याल, भगत सिंह तथा अनेक अन्य क्रांतिकारियों ने जेलों में गहन अध्ययन करके खुले आंदोलन की महत्ता को स्वीकार किया था। भगतसिंह-युग गुप्त आंदोलन से खुले आंदोलन में संचरण का युग था। इस अवधि में क्रांतिकारी व्यक्तिगत हत्याओं की रणनीति पूरी तरह छोड़ तो नहीं पाए थे परंतु वे जन आंदोलन; जन संगठन, जन संघर्ष और समाजवाद की विचारधारा स्वीकार करने की ओर बढ़ रहे थे। ये 'टेरो-सोशलिज्म' (आतंकवाद समर्थित समाजवाद) की विचारधारा अपनाए हुए थे।